# THE BOOK WAS DRENCHED

UNIVERSAL LIBRARY
OU_178774
UNIVERSAL LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H 83.1/M34H Accession No. 1535

Author मार्कण्डेय ।

Title हंसा जाई अकेला । 1957

This book should be returned on or before the date last marked below.

पान-फूल', 'महुए का पेड़' और 'हंसा जाई अकेला' में मार्कण्डेय की कहानियाँ और 'पत्थर और परछाइयाँ' में एकांकी संगृहीत है।

कुछ ही दिन पहले इनकी एक लम्बी प्रेम-कथा 'सेमल के फूल' प्रकाशित हुई है।

और अब 'लोढ़ा-चक्र'—एक नयी शैली का हास्य-व्यंग्य से भरा-पुरा उपन्यास शीघ्र ही प्रकाशित होगा।

# हंसा जाई अकेला

मार्कंडेय की कहानियों का तीसरा संग्रह

नया साहित्य प्रकाशन, इलाहाबाद

की ओर से

प्र का श क

**राजकमल प्रकाशन**

प्रा इ वे ट लि मि टे ड

दिल्ली, इलाहाबाद, बम्बई, पटना, मद्रास

पुस्तक संख्या—३, ग्राम-साहित्य-माला—२
कापी-राइट : फ़रवरी, १९५७
मूल्य : दो रुपये, आठ आने

मुद्रक : हिन्दी साहित्य प्रेस, इलाहाबाद
प्रकाशक : नया साहित्य प्रकाशन
इलाहाबाद—२, की ओर से
राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लि०, इलाहाबाद

बाबा को सादर
जिन्हें लोग 'यात्री' और
'नागार्जुन' नाम से जानते हैं।

अनुक्रम


| | | |
|---|---|---|
| कल्यानमन | : | १७ |
| सोहगइला | : | ३१ |
| दौने की पत्तियाँ | : | ४१ |
| बातचीत | : | ५३ |
| हंसा जाई अकेला | : | ६३ |
| चाँद का टुकड़ा | : | ८५ |
| प्रलय और मनुष्य | : | ९७ |

## कहानी : नयी-पुरानी

कहानी में जब हम 'नयी' विशेषण लगाते हैं, तो इसका अभिप्राय यह नहीं है कि हम समसामयिक कथाकारों द्वारा दिये गये किसी विशेषण का प्रयोग कर रहे हैं। नयी कहानी से हमारा मतलब है उन कहानियों से, जो सच्चे अर्थों में कलात्मक निर्माण हैं, जो जीवन के लिए उपयोगी अथवा महत्त्वपूर्ण होने के साथ ही, उसके किसी न किसी नये पहलू पर आधारित हैं या जीवन के नये सत्यों को एकदम नयी दृष्टि से दिखाने में समर्थ हैं। इसलिए आसानी से यह कहा जा सकता है कि हर समसामयिक कहानी नयी नहीं है, चाहे लेखक नया ही क्यों न हो, अथवा एक नये लेखक की ही एक कहानी नयी हो सकती है, दूसरी पुरानी।

कथानक की दृष्टि से विचार करने पर, नये-पुराने का काल-सम्बन्धी अंतर कई कारणों से कभी कम, कभी ज़्यादा होता है। इन कारणों में, किसी देश की जनता के सामाजिक-राजनैतिक जीवन के परिवर्तन-क्रम या

किसी विशिष्ट व्यक्ति के प्रभाव का भी हिस्सा हो सकता है। क्योंकि जनता का जीवन ही वह धरातल है जहाँ लेखक अपने अनुभव संगठित करता है और सामान्य जीवन की भाव-भूमि पर ही उसकी संवेदनाएँ निर्मित होती हैं। जो लेखक जितनी ही गहराई से इन बदलती हुई भाव-भूमियों को पकड़ पाता है, वह उतनी ही तीव्रता से जीवन की संवेदनाओं को संचित कर अपने अनुभव में वृद्धि करता जाता है। इसलिए, कथानक की नवीनता इसमें नहीं है कि उसमें किसी अछूते भू-भाग के अजीब से प्राणियों का वर्णन है बल्कि इसमें है कि साधारण मानवीय जीवन में, वह कौन-सा विशेष नयापन है जो हमारी सामाजिक परिस्थितियों के परिवर्तन के कारण पैदा हो गया है, या बिना किसी परिवर्तन के भी जीवन का कौन-सा ऐसा पहलू है, जो साहित्य में अब तक अछूता है। उदाहरण के लिए, प्रेमचंद की 'पूस की रात' और यशपाल की 'फूलो का कुर्ता' नामक कहानियों को लीजिए। दोनों कहानियों में वर्णित सत्य हर पाठक को उद्वेलित करते हैं, पर कलाकार की दृष्टि केवल सत्य को बतला देने ही में नहीं है। वह सत्य को सजीव बना कर, कुरूपता को भी सौन्दर्य से भर देता है। जहाँ एक ओर,

विज्ञान की प्रगति के साथ व्यवसाय के केन्द्रीकरण और मशीन-युग के आगमन के कारण भूमि-हीन किसान की धरती में गड़ी हुई जड़ें उखड़ने का चित्रण कर प्रेमचन्द ने किसान की दरिद्रता का हृदय-द्रावक खाका खींचा है, वहीं दूसरी ओर यशपाल ने बाल-विवाह और पर्दे की भोंडी प्रथा की सड़ाँध पर पड़े हुए ग़लीज़ नक़ाब को उठा कर हमें अपनी सामाजिक दुर्नीति पर शर्म से गड़ जाने के लिए मजबूर कर दिया है। प्रेमचन्द ने जीवन के एक परिवर्तित होने वाले पहलू को देखा है तो यशपाल ने केवल एक अनदेखे जीवन-चित्र पर से पर्दा हटा दिया है।

कहानी में नवीनता का आग्रह विशिष्ट प्रकार के जीवन पर न हो कर, जीवन के विशिष्ट प्रकार पर होना चाहिए। गाँव की कहानी लिखना ही कलात्मक माध्यम की नयी खोज नहीं कहा जा सकता बल्कि गाँव के जीवन में नयी दृष्टि का समावेश करना तथा वहाँ के जीवन की परिवर्तित दिशा को पुरानी पीठिका में देख पाना ही नयी कहानी के सृजन में सहायक हो सकता है। शहरी, पल-पल प्रेमाश्रु-विह्वल, तरल-हृदया,

सुकुमार कन्या को, गृह-कार्यों में पिसी, रूखड़ी और श्रमित किसान बाला के हृदय में बिठा कर, गाँव की नयी कहानी का सृजन नहीं हो सकता अथवा बोली के शब्दों के बेमेल पैबंद लगा कर, भाषा के ज़ोर पर, कोई किसान की कठोर ज़िन्दगी का संवेद्य धरातल नहीं छू सकता। उसके आदर्शों को देख पाने के लिए लेखक में पैनी दृष्टि और अनुभव की गहराई के साथ उसकी सामाजिक परिस्थितियों को सही दृष्टि से देखने की क्षमता भी आवश्यक है। इसलिए, कथानक की मौलिकता अथवा कथा की सफलता जाँचने के लिए गाँव-शहर में बाँट कर, कहानी के खाते बनाना उचित नहीं जान पड़ता।

'कहानीपन' कहने में, कल्पना की ध्वनि ज़्यादा मिलती है, यथार्थ की कम। हो सकता है इस कथन से कई लोगों की सहमति न हो सके, पर मुझे लगता है, आधुनिक युग में सभी जागरूक कथाकारों के लिए, कहानी कल्पना की बुनावट न हो कर, जीवन का एक यथार्थ अंश बन गयी है। उसके कथानक जीवन की भौतिकताओं की तरह ही कठोर एवं सत्य होने लगे हैं, और उसका शिल्प भी समस्त मानवीय व्यवहार

की परम्पराओं का निर्वाह करने लगा है। एक तरह से देखें तो जीवन में जो होता है और अत्यंत सामान्य रूप में होता है—उसकी खोज हम कहानी में करने लगे हैं। पहले लेखक कल्पना से कहानी गढ़ता था पर अब कल्पना से उसमें रंग भरता है—यथार्थ को और भी चटख और प्रभावशाली बनाता है। कल्पना-प्रसूत कथानक नये लेखक को अस्वाभाविक लगते हैं और यह उसकी प्रगति का एक मुख्य लक्षण है।

लेकिन यह एक हैरत की बात है कि हिन्दी में प्रेमचन्द के बाद, एक बहुत बड़े अरसे तक कहानी कल्पना का पल्ला पकड़े रही, जब कि स्वयं प्रेमचन्द ने उसे कठोर यथार्थ की भूमि पर ला उतारा था। यहाँ तक कि यशपाल ने भी अपनी कहानियों के चमत्कृत करने वाले अंतिम सूत्रों को जड़ने के लिए काल्पनिक जीवन-खंडों के कतिपय कथानकों का उपयोग किया है। सत्य की ज़बान तो उन्होंने पा ली, पर उसकी देह के दर्शन उन्हें कभी-कभार ही हुए हैं। मसलन 'पाँव तले की डाल' और 'अस्सी बटे सौ' के अंतिम नुस्खे को दो विभिन्न कथानकों में जड़ कर, उन्होंने एक ही सत्य को दो देह प्रदान कर दी हैं।

नये लेखक के पास जीवन के अछूते चित्रों का भांडार है और यह उसका गुण और दोष दोनों बन रहा है। घर में बहुत सारा सामान होने पर भी यदि घर के मालिक में सौंदर्यानुभूति न हो तो अपनी समझ से स्टूल को सोफ़े पर रख कर वह कोई अनुचित काम न करेगा। इसलिए, सामान के साथ उसकी सजावट की दृष्टि और सामान की उपयोगिता तथा उसके गुणात्मक भेद का ज्ञान उस आदमी के लिए और भी ज़रूरी हो जाता है जिसके पास सामान विपुल मात्रा में हो। नये लेखकों में से बहुतों के पास कच्चा माल है, यानी जीवन के नये-नये, अछूते खंड-चित्र वे सामने ला सकते हैं, पर उनकी उपयोगिता, उनकी तराश, उनका वज़न तथा उसे ठीक से देख और पहचान पाने की दृष्टि, उनके पास कम है। यही कारण है कि इतनी सारी नयी कहानियाँ एक दूसरे में घाल-मेल हो गयी हैं और उनका अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व बनने के रास्ते पर बहुत धीरे-धीरे बढ़ रहा है।

वैसे नये युग में महान अभिव्यक्तियों के कला-निर्माण विरल होते जा रहे हैं, जिसे हर सजग और ईमानदार कलाकार महसूस करता है। उसे लगता है कि विज्ञान

की प्रगति ने जहाँ उसे समृद्ध एवं सुसंस्कृत बनाया है, वहीं उसकी आधारभूत वैयक्तिक आस्था का ह्रास भी किया है। वह अपने संवेद्य के प्रति उतना आस्थावान नहीं रह गया है और इसका सबसे बड़ा कारण है हमारा समय, जिसे हम आसानी से मूल्यों के विघटन का काल कह सकते हैं। राम और कृष्ण के समान अन्यान्य सत्ता-विभूषित व्यक्तियों को वर्ण्य के रूप में स्वीकार करने में, पीढ़ियों की सामाजिक मान्यता तथा यश और धन सब सुलभ होते थे, लेकिन हमारा नया संवेद्य जनतंत्र का ग़रीब जन है, जिसके पास न धन है, न यश, न पीढ़ियों की परम्परागत सामाजिक प्रतिष्ठा से विभूषित नयी मर्यादा। ऐसे उलझे हुए, कठिन वर्ण्य से मित्रता निभाना कितना कठिन है, इसे समझने के लिए पूरे दो युगों की सम्पूर्ण संयोजित चेतना का उपयोग करना पड़ेगा।

रूप-विधान और शिल्प के चमत्कार की कथरी ओढ़ने वाले संसार के अधिकांश कलाकारों एवं साहित्यिकों की मनोवृत्ति का रहस्य यही है कि आधुनिक मानव की दुरूह एवं अनिश्चित मनोभूमि का धरातल छू पाने में असमर्थ हो कर वे चिन्तन के रुख को ही दूसरी ओर

मोड़ देना चाहते हैं। नये कथाकार के सामने यही एक महत्वपूर्ण प्रश्न है कि वह किस तरह इन नयी, ऊबड़-खाबड़, दुर्गम भाव-भूमियों का परिवहन कर यथार्थ तक पहुँचे, उसको पहचाने और नयी कला-कृतियों का सृजन करे!

इन थोड़े-से बेतरतीब विचारों के साथ, 'हंसा जाई अकेला'—मेरी सात कहानियों का संग्रह प्रस्तुत है। हो सकता है उपर्युक्त कसौटी पर ये कहानियाँ खरी न उतरें, साथ ही इनमें न 'पान-फूल' की कोमल संवेदनाएँ और लुभावनी भाषा है, न 'महुए का पेड़' की झुँझलाहट और आक्रोश से भरी तीखी सामाजिक दृष्टि। बेहद सहज शैली में कही गयी इन कहानियों में मैंने गाँव के जीवन का नया धरातल छूने का प्रयत्न किया है। सफलता मुझे मिली है या नहीं—यह आप जानें! हाँ, इस संग्रह की अंतिम कहानी 'प्रलय और मनुष्य' की कथा-भूमि कुछ दुरूह लगेगी, पर मेरा विश्वास है, उसे पूरा पढ़ जाने पर आपको प्रसन्नता होगी।

२ डी, मिंटो रोड
इलाहाबाद
फरवरी, १९५७

मार्कण्डेय

कल्यानमन

इधर-उधर, चारों ओर बेल और झरबेरी के झार-झंखाड़, बीच-बीच में शीशम-नीम और कहीं-कहीं इक्के-दुक्के आम के बड़े-बड़े पेड़ों से घिरे सोलह बीघे के इस तालाब को कल्यानमन कहते हैं। कुल एक-डेढ़ गज़ पानी ही ठहरता होगा उसमें, और वह भी तब, जब साधारण हमवार खेत भी पानी में डूबे रहते हैं; वर्ना पानी आया और गया, फिर हर जगह एक-सा समतल, थिर और निर्मल जल। एक ओर भीट के पास नरई के हरे, शाख विहीन, नुकीले डंठलों की बारात और दूसरी ओर सिंघाड़े के गहरे-हरे और बीच में लाल धब्बों वाले सुहावने छत्ते। कोई दिल वाला आँखें डाल दे, तो शोभा की इस अनबूझी बंसी में फँसे बिना न रहे।

इसी कल्यानमन की पूरब दिशा में एक ऐसा टीला है, जिस पर घास का एक तिनका भी नहीं उगता। मंगी की झोपड़ी इसी पर है। तीन ओर सरकंडे और सरपत का टट्टर, सामने का हिस्सा खुला हुआ। मंगी इसी जगह बोरसी में आग और चिलम-हुक्की लिये, बैठी रहती है।

उसकी दृष्टि केवल दो जगह रहती है; कभी राख से भरी, सामने रखी बोरसी पर, तो कभी सिंघाड़े के छत्तों पर। लेकिन एक पनारू है कि उसे सुध-बुध ही नहीं। मंगी के मरने पर क्या होगा? यह सब कौन देखेगा—यही एक बात उसके दिमाग़ को कभी-कभी कीड़े की तरह चालने लगती है।

—किसका बच रहा है। जगई खाली डराने-धमकाने से स्टीपा देकर भाग गया और मुसई ने सौ रुपये लेकर माँ-बाप की धरती पर से पाँव उठा लिये। बस वही तो एक बच रही है, और उसके साथ भी क्या कम किया ठाकुर ने! कितनी बार पटवारी को धमकाया, कितनी बार उसे रुपये देने की लालच दी। एक बार तो यहाँ तक कहा, "तुम मंगी का नाम कल्यानमन वाले खेत से काटकर, अपना चढ़ा लो! मैं आधा तुम्हें ही दे दूँगा पर कुछ तो बचाओ!"

लेकिन पटवारी के मरे बाप की रूह तक मंगी के नाम पर काँप जाती है, पटवारी की क्या हस्ती। जाने कब, क्या कर बैठे? उसका कोई भरोसा है!

मंगी है एक ही अपने गाँव में, कान की बहिर-ठेंठ, किन्तु आवाज़ की इतनी कड़ी कि नया आदमी सहसा डर जाए। आँधी की तरह पैर के पंजों के सहारे लुढ़कती हुई भागती चलती है। घर में एक भड़साँय, दो घर में पानी की भराई और वही कल्यानमन के सिंघाड़ों की खेती है, उसके पास। पनारू दो घरों में पानी क्या भरता है, अपनी ज़िन्दगी ही पट्टा कर दी है, उसने। उसे जैसे यही सब अच्छा लगता है। बाँस की लचीली काँवर में पानी के बड़े-बड़े मटके लटकाये, पसीने से लथपथ, वह सारे दिन कुएँ से घर और घर से कुएँ के चक्कर लगाया करता है। कोई भर मुँह बोल दे, फिर पनारू उसका अपना बन जाता है। सयाना, हट्टा-कट्टा पर घरों की बूढ़ी औरतें कहती हैं, "लैमर है, लैमर, भला कौन ऐसी करम की खोटी होगी जो इसकी गाँठ बँधेगी। जब इतनी उमिर तक मँगिया की मार सहता है तो वह बेचारी तो भर पेट खाना भी नहीं पाएगी।"

लेकिन जवान लड़कियाँ और गुलाबी रंगों में भीगे नाखूनों वाली बहुएँ उसे बहुत चाहती हैं। जी भर उन्हें नहलाएगा, सबेरे आते समय दतुअन तोड़ता आएगा, और काम पड़ा तो कहीं दौड़ा हुआ चला जाएगा।

मंगी फूटी आँख से भी यह सब नहीं देखना चाहती। जब तक बड़े मालिक जीवित थे, मंगी काम करने बड़की बखरी आती थी, पर लोग कहते हैं, जब वह बिगड़ते, तो जितना मालिक बोलते, उसका दूना बोलती, मंगी। क्या मजाल जो जबान बंद हो। लोग दाँतों तले अँगुली दबा लेते,—कैसी मुँह जोर है, राम! भला जिसे देख कर लोग रास्ता बचा जाते हैं, उससे बात लड़ाती है।

मंगी को क्या डर! कहती, "कोई सेंत का खाती हूँ जो लात-गारी सहूँ। रात-दिन छाती पर बज्जर जैसा गगरा-बाल्टी ढोती हूँ। बन्न कर दूँ तो सरने लगें रानी लोग। का हमरी देहियाँ माटी की है! का हमके देखे वाले की अँखिया घुमची की हैं! हमहूँ हाथ-पाँव में मेंहदी रचाय के बैठ सकती हैं।"

मंगी तब तक बोलती रहती, जब तक ठाकुर उसके आगे से हट न जाते।

ठाकुर के मरते ही मंगी ने बखरी छोड़ दी थी। कहती, "का धरा है, अब उस मनहूस घर में। अब न वह बात रही, न बात करने वाला। लवंडे-लपाड़ियों का कोई भरोसा। कभी कुछ कह ही दें, कोई बदजबान ही निकाल दें!"

मंगा सबेरे, रहट्ठे का खरहरा ले कर निकलती, सारे बगीचे की पत्तियाँ बटोर डालती, उन्हें इकट्ठा कर के बड़े-बड़े गाँज बना देती और साल भर उसी से भाड़ के ईंधन का काम चलाती।

बरसात के चार महीने वह सिंघाड़ों के पीछे लगती। उस बियाबान, जंगली सिवान में जब लोग पाँव रखते थरथराते तो वह कमर-कमर भर पानी में बिना किसी रोशनी, बिना किसी डर के चली जाती और कल्यानमन के भीटे पर उसकी चिलम वाली चिमटी की खरोंच से फुर-फुर उड़ने वाली चिनगारियों का मज़ाक, जैसे सारी अँधेर-गुप्प सृष्टि की छाती रूपी पत्थर पर बच्चों के छुर्री छोड़ने जैसा लगता रहता।

आज सबेरे से मंगी उदास है। उसे बार-बार यही लगता है कि वह कब तक जीएगी। कब तक इस पोखरी के पानी में सती होगी। सिंघाड़े की पत्तियों में कीड़े भी तो लग रहे हैं। शरीर में रक्त-मांस होता तो वह पनारू का मुँह देखती? कछाना मार कर आधे-आधे दिन घिन्नई पर बिता देना उसके लिए मामूली बात थी। लेकिन वह समय की बात थी। तब तो उसने अपने ब्याहते को भी कभी आदमी नहीं समझा। उसकी कभी परवाह नहीं की।

इस एक विचार से मंगी जाने किस लोक में चली गयी। उसकी नसें जैसे सिकुड़कर टूट गयीं और अशक्त शरीर में प्राण नाम का पंछी तड़फड़ाने लगा।

बड़े ठाकुर के मरने के बाद की बात है। माघ की बदरी पैर तोड़ कर आसमान में बैठ गयी थी। घर की काठ की किवाड़ें भी ठारी के बाण से काँप-काँप उठती थीं। पशु-पक्षी शीत में ऐसे जम गये थे कि उनका कोई अस्तित्व ही नहीं जान पड़ता था। चारों ओर सूना—घर-बाहर, पेड़-पालव सब एक से। कहीं तो जीवन की एक रेखा दीखती, और उसी में मंगी के घर ईंधन चुक गया।

पत्तियाँ भींग गयी थीं। मंगी ने लग्गा सम्भाला और बाग़ की ओर हो रही। आम के बंडे तोड़ते-तोड़ते साँझ हो गयी। किसी तरह उन्हें लाद-फाँद कर घर लायी, आग पर रखा और आँच बना कर पनारू की सेंक-साँक की। उसे फुसलाकर सुलाया पर भूख का मारा लड़का, कहाँ सोने वाला! नींद भी कहीं भूखे का साथ देती है। बड़की बखरी की चार लिट्टियों की आशा लिये वह इतनी देर बैठी रही पर बंगा का कहीं पता नहीं। अंत में ऊबकर उसने बोरसी में आग भरी और उसे चारपाई के नीचे रख कर, कथरी में घुस गयी। जाने कब, शायद रात का दूसरा-तीसरा पहर रहा होगा; बंगा ने किवाड़ भुड़कायी।

मंगी ने उठ कर दरवाज़ा खोला तो वह पानी में भींग कर सिकुड़ा, भींगे पिल्ले की तरह थर-थर काँप रहा था, पर उसकी अँगुलियाँ दरवाज़े के ऊपरी हिस्से में फँसी हुई थीं—"खो...दो... इसे!...इऽस्से...देखो...मैंऽ...मैं कितना बड़ा हूँ...कैसी...कैसी छोटी है दुवार...मैं अन्नर कइसे आऊँ...कइसे...कइ..."

उसकी ज़बान टूटती जा रही थी। वह लड़खड़ा रहा था। मंगी का कलेजा जल कर रह गया। बच्चे की भूख, अपनी परेशानी और बंगा की नशाखोरी; उसे लगा, जैसे कोई भूत ठहाका लगा कर बत्तीसों दाँत बाये खड़ा हो। जैसे किसी ने उसके पेट में कस कर ऐंड़ी मार दी हो। उसने झटके से दरवाज़ा बंद कर दिया और भूखी सियारिन की तरह तिलमिला कर बच्चे की तरफ़ झपटी—क्यों न दबा दूँ इसका गरदन और इस नसेड़ी को लात मार कर, कल दूसरे घर में बैठ जाऊँ। देखूँ यह दाढ़ीजार किस बूते पर सराब पीता है।

पर जाने क्यों, वह रुकी रही। कुछ भी करते नहीं बना, उससे।

न होता कुछ तो उसे खपरैल के साये ही में कर लेती, पागल ! लेकिन वह अशक्त हो गयी थी—चेतना विहीन, निष्प्राण ।

सबेरे तक तो बंगा को चला जाना चाहिए था, इस दुनिया से परे, जहाँ केवल आत्मा का वास है । वहाँ शरीर की इस दुर्दशा की कोई गुंजाइश नहीं । इतनी पीड़ा के लिए कोई अवसर नहीं, पर वह जीता रहा, साँस के पतले तारों में बँधा हुआ, लेकिन ये तार अब तक बेसुरे हो चुके थे...घरऽर् र्...घोंऽ..घोंऽऽ...

वैद्य जी ने बताया—शीतांग हो गया है ।

मंगी ने सुना, देखा, दवा-दारू में लगी, पर जाने क्यों तब तक वह सूख गयी थी । जैसे उसे तो मालूम ही था, उसी ने तो किया है, यह सब ।

वैद्य जी की नाड़ी की धराई के सोलह आने के लिए उसे फिर बड़की बखरी की बहू का दरवाज़ा झाँकना पड़ा । वे चवन्नियाँ सूद पर रुपया चलाती थीं, पर मंगी को देख कर पुराना पँवारा ले बैठीं, "सब दिन एक समान नहीं होता मंगी । राजा हरिचन्न पर भी बिपत पड़ गयी थी । तब तो लगा, तू चौखट भी नहीं लाँघेगी । बड़े मालिक क्या गये, तेरी सेवा के लायक कोई रहा ही नहीं, मुँदा हमसे जस-अपजस से का सरोकार ! राम-राम कहो ! यही दवा है । काहे रुपया पानी में फेंक रही हो ।"

उन्होंने आँचल के खूँट से दो अठन्नियाँ छोड़ कर, छन्न से उसके आगे फेंक दीं । मंगी पैसा उठा ही रही थी कि बड़की बहू कँहर कर बोलीं, "बीस आना हो जाएगा अगिले माघ में, चेत रखना !" तभी पनारू रोता-रोता आया । वह बता ही क्या पाता ?

और मंगी दौड़ती-भागती घर पहुँची तो पंडित-बो बंगा को खटिया से उतार कर, तुलसी और पानी उसके मुँह में डाल रही थीं।

मंगी यही सब सोच रही थी, कि चारपाई के नीचे कुछ खुरखुराया और कल्यानमन के सिंघाड़ों के बीच एक छपाक् की आवाज़ हुई, शायद कोई पहिना उछला था और जाने क्यों मंगी का सारा रोंया बिनबिना कर खड़ा हो गया। उसने सामने दूर तक कल्यानमन की छाती पर फैले, अपने सिंघाड़ों के छत्तों पर निगाह डालनी चाही पर अँधेरे का भार इतना बढ़ गया था कि उसकी पुतलियाँ, बरौनियों के पार कुछ न देख सकीं। बस पानी की हल्की टिप्टिप् उसे सुनाई पड़ी, जो झींगुरों की झनकार और मेढकों के पाठ-दोष में घुमड़ी और टूट कर खो गयी। तभी उसकी झिलँगा चारपाई के नीचे ज़ोर की चें-चें की आवाज़ हुई। उसने जल्दी से घिन्नई में बाँधे जानेवाले एक बाँस के टोंटे को खींचना चाहा कि ज़ोर की फों-फों की फुफकार ने उसके प्राणों की शक्ति ही छीन ली। उसने जल्दी से आग में कुछ सूखे खर-पात डाल कर रोशनी की तो एक भयानक सर्प को क्रोध में फन काढ़े झूमते देख-कर, उसका हलक़ सूख गया। पल भर वह सोच भी नहीं पायी कि वह क्या करे! लेकिन जैसे ही आग बुझी, वह झोपड़ी से बाहर निकल आयी और पानी में भींगती, देर तक खड़ी रही।

ऐसा नहीं कि साँप उसके लिए कोई नयी चीज़ है। पल मारते साँप के फन पर डंडा रख देना, उसके बायें हाथ का काम था, पर इस अँधेरे और मन की प्रबल निराशा ने उसे भयातुर बना दिया था। वह घर तो लौट ही सकती थी पर कहीं दूसरी ओर से पनारू

न आ जाए ! उसे क्या मालूम कि मड़ैया में क्या है ? कहीं उसी खाट पर जा बैठे, तो ?

वह बड़ी देर तक पानी में भींगती यही सोचती रही। कई बार उसके मन में आया, वह अभी चल कर ठाकुर के सामने इस्तीफ़े के कागज़ पर अँगूठे का टीप लगा दे, लेकिन तभी बादलों में चमक हो जाती, सारे प्रांतर का तिनका-तिनका उजागर हो जाता और कल्यानमन के विस्तृत सीने पर मोटे कवच की तरह कसे हुए सिंघाड़े के छत्ते, उसे धरती की माया में जकड़ कर बाँध लेते।

दो साल हुए जब उसने सुना था कि जिसकी जोत होगी, भूयँ उसी की हो जाएगी। तब उसे लगा था, न तालाब धरती है, न सिंघाड़ा खेती। कहाँ हल चलाती हूँ, मैं ? कहाँ मेरी जोत है ? लेकिन इतना ही नहीं, उसे तो अभी इस बात पर भी शक था कि सुराजी लोगों का राज हो गया है। बंगा सुराजिओं की सभा में जाया करता था। कभी खुश रहता तो लौटकर मंगी से अपने सारे मंसूबे कहता, पर मंगी उसे डाटकर चुप कर देती, "ऐसे ही राजपाट छोड़ कर चला जाएगा तो राजा रामचन्नर और मलिच्छ लोग में फरक क्या हुआ ?" लेकिन बंगा उसे बार-बार समझाता कि सब तो सब, यह कल्यानमन अपना हो जाएगा। चाहे पानी की भराई में ही क्यों न मिला हो, पर सिंघाड़े की काश्त तो वही करता है। लेकिन मंगी इसे नहीं मानती थी और उस दिन तो उसको अपने पर ध्रुव विश्वास हो गया था, जब बंगा के मरते ही घर में एक ओर लाश पड़ी थी और दूसरी ओर प्यादा बेदखली का हुकुमनामा उसे दे गया था, फिर कितनी मुश्किल से उसने अपना नाम चढ़वाया

था, कितनी परेशानियाँ सही थीं, क्योंकि उसका पनारू तब नाबालिग था।

मंगी इसी असमंजस में पड़ी रही। उधर पानी की बूँदें भी कड़ी हो गयीं, हवा भी धीरे-धीरे सुरसुराने लगी, उसे कुछ सिरहन भी मालूम होने लगी पर उसका मन साँप की माँद में हाथ डालने को न हुआ और वह लुढ़कती-पुढ़कती घर की ओर चल पड़ी।

पनारू घर भी नहीं मिला।—बखरी रोटी लेने तो नहीं चला गया, कहीं कल्यानमन न चला जाए!

इसी बीच वह झपट कर बड़की बखरी पहुँच गयी। पनारू दहलीज में एक बड़े तखत पर गहरी नींद में सोया था। मंगी ने उसे झकझोर कर जगाना चाहा पर ठाकुर के नौकर ने उसे डाँटा, "क्यों बेचारे को जगाती हो। जाकर कल्यानमन पर ठंडी हवा खाओ! मरने-खपने को तो अच्छा है, गरीब। जैसे यहाँ नोकर, तैसे अपने घर में नोकर। उसका है क्या तुम्हारे घर में?"

मंगी की खोपड़ी ठनकी।—कहीं ठाकुर हमारे ही घर में आग तो नहीं डाल रहे हैं! सब तरह से हार कर यह एक अच्छा उपाय हो सकता है, उनके लिए। उसने झकझोर कर पनारू को जगा दिया। मंगी को देखते ही पनारू एक बार तो खिसिआया फिर जैसे जल-भुन गया।

"यहाँ भी खाने पहुँच गयी। मैं सब तेरी चाल समझता हूँ। मेरे परान न खा, जा कर मर, उसी कल्यानमन को छाती पर रख कर! जब बाबू की तुम नहीं...।"

पनारू का वाक्य पूरा भी नहीं हुआ था कि मंगी के झापड़ों से उसकी कनपटियाँ झनझना उठीं। "यही सीखने बैठा रहता है यहाँ,

जानता नहीं कि ये लोग जमीन के लिए, आदमी की गरदन भी काट सकते हैं। पहले यही घर थे कि काम करने पर खेत मिलते थे, आम के पेड़ मिलते थे, शादी-ब्याह पर लकड़ी-फाटा, गहना-कपड़ा मिलता था, हरजी-गरजी अनाज-पानी मिलता था। मालिक लोग तनी-तनी बात पर मुँह जोहते थे। अब तो हर की जोताई एक खेत मिलेगा। बेचारा मजूर उसे खाद-पानी देकर जोतने लायक बनाये कि दूसरी साल उसे कोई दूसरा ऊसर-पापर बताकर, बना-बनाया खेत हथिया लिया जाएगा। कहीं उसका नाम न चढ़ जाए खेत पर। अँखिया तो फूट गयी हैं सुरजियन की कि यह अन्हेर भी नहीं देखते। खेती चमरू करेगा, परताल ठाकुर के नाम से होगी। बीच में पटवारी इधर से भी खायेगा, उधर से भी खायेगा। अब तो बेभूँय का किसान, खाद हो गया है, खाद। बस वह खेत बनाता है।

"बड़ा कनून सीख के बैठा तो है, भला बची है एक बिस्सा भूँय किसी मजूर-धतूर के पास? सभी तो खेत जोत रहे थे। कोई मार खा कर इस्टीपा लिख गया, तो किसी को बहका कर सादे कागद पर अँगूठे की टीप ले ली, इन लोगों ने। किसी को सौ-दो सौ देकर टरकाया। कहीं रह गया है, कुछ? वह तो कहो मुझे, जो बैठी हूँ बज्जर की तरह छाती पर..."

"तो मुझ से क्या मतलब...?" पनारू जैसे कुछ कहते कहते रुक गया।

"तुम से सरोकार ही नहीं...?" मंगी दाँत पीसती हुई तखत पर चढ़ गयी और पनारू का कान पकड़ कर झकझोरना ही चाहती थी कि ठाकुर का बड़ा लड़का खड़ाऊँ चटकाता बखरी से निकला।

"क्या शोरगुल मचा रखा है!" उसने दूर ही से डाँटा, "बेचारा

लड़का सयाना हो गया और अब तक जगह-जमीन पर हर जगह अपना नाम चढ़वा रखा है। उसका न घर से मतलब, न दुआर से। क्या वह तुम्हारा नौकर है! वह तुम्हारी सारी होशियारी समझता है।"

"ठाकुर हमारा घर नास कर रहे हो।" मंगी दुख की कराह से आज पहली बार जैसे टूट कर बोली, पर पनारू अब क्यों चुप रहता! सहारा पाकर, काँपते हुए कहने लगा, "बहनोई जो तीसरे दिन दुवार खनते रहते हैं। क्या हमें पता नहीं कि क्यों इतना चक्कर काट रहे हैं। उन्हीं को लिखना चाहती हो तो जा कर लिख दो! मेरे पास भगवान का दिया इस बखरी में सब कुछ है।"

मंगी की समझ में सब कुछ आ गया। घृणा से तिलमिला कर, वह पनारू के बालों में बर्रे की तरह चिपट कर, न जाने कितनी देर तक लात-घूसे चलाती रही और जब थक कर पसीने से लथपथ हो गयी, तो जाने कब की बँधी आँसुओं की धारा उसकी आँखों से बह निकली—रिस-रिस कर, हिचक-हिचक कर, वह रोती रही और ठाकुर को कोसती रही, फिर सहसा उठी और बड़े लड़के से कहने लगी, "जब मैं अपने सराबी आदमी को नहीं हुई और उसे ठारी में गला कर मार डाला तो इस भोंदे लड़के को कल्यानमन नहीं दे जाऊँगी। मँगाओ अपना कागद-पत्तर, ले लो, मेरे अँगूठे का टीप!"

फिर जैसे किसी गहरी पीड़ा में डूबी हुई कहने लगी, "मैं जानती थी कि यह सँभाल नहीं पाएगा। इसे तुम लोग फँसा लोगे... और हुआ भी तो वही।"

वह पागल-सी बकने लगी, "जल्दी करो, मँगाओ कागद! नहीं तो मैं जाती हूँ। मेरी झोपड़ी में मेहमान बैठे हैं। उन्हें अकेला छोड़ कर आयी हूँ।"

काग़ज़ पर अँगूठे की टीप देने वह बढ़ी ही थी कि पनारू का सारा शरीर काँप कर रह गया। उसके जी में आया, बढ़कर माँ का हाथ थाम ले, पर उसे याद आ गया,—झोपड़ी में मेहमान बैठे हैं, उन्हें अकेला छोड़कर आयी हूँ।—और वह हँस कर रह गया।

"कल्यानमन लेना है न, क्यों न बैठे होंगे?" वह बुदबुदाया, पर मंगी जैसे आँधी की तरह कल्यानमन की ओर भागी।

कौन जाने मेहमान अब भी फन काढ़े बैठे हों, कल्यानमन जो लेना है, उन्हें।

# सोहगइला

उसके दोनों निरीह, खुले हुए, नन्हें-नन्हें हाथों को पकड़ कर, उनमें सोहगइला दबाते दबाते, माँ की बरसाती नदी-सी आँखें किनारों को लाँघ कर बह चली थीं, "इन्हें छोड़ना नहीं। कुल-परिवार की लाज का धियान रखना !" और माँ ने लाल ज़मीन पर छोटे-छोटे, पीले धब्बे वाली मोटी अँचरी-मनौरीदार सुहा के आँचल में टँके घुँघुरुओं वाले किनारे को थोड़ा नीचे खींच दिया। घूँघट से दुलहिन का मुँह ढँक गया। देह पहले से ही ढँकी थी। दिखाई पड़ रहे थे केवल वे दो नन्हें-नन्हें हाथ, जिनमें लाल रंग का सोहगइला, गुलाब के लाल फूल की तरह लहक रहा था।

थोड़ी देर तक माँ को कुछ भी दिखाई नहीं पड़ा था—केवल एक धुंध-सी धुएँ की सृष्टि और रामजस-बो के फूटे नगाड़े का किड़िक्-किड़िक्-गुड़ुम्...किड़िक्-किड़िक्-गुड़ुम्...

लेकिन खटोली को उठती जान, उसकी अथाह जल में डूबी दृष्टि, अकुला कर बाहर आ गयी थी और एक बार फिर उसने बेटी के दोनों हाथों को कस कर दबाते हुए कहा था, "सास-ससुर का कहना मानना ! जहाँ बैठाएँ, वहीं बैठना, जहाँ उठाएँ, वहीं..." और वह फूट-फूट कर रोने लगी थी, "चीज-बरन का धियान रखना रनियाँ, कहीं गिरा न देना !"

रनियाँ की खटोली चल पड़ी थी।

बैशाख की सुबह थी वह और हवा के पैर धूप के कड़े रंग के नशे में लड़खड़ाने लगे थे। कहार रास्ते की भुल-भुल रेत को अच्छी तरह जानते थे, इसलिए उनके पैरों में बिजली बँध गयी थी, पर रनियाँ जैसे अवसन्न थी। वह अभी रो तो इसलिए पड़ी थी कि उसकी माँ रो रही थी, गाँव की सारी औरतें आँसू बहा रही थीं, उसकी सखी नगीना उसके गले से लग कर फूट-फूट कर बिलख रही थी, वरना उसे रुलाई आती ही क्यों ! इस भीड़-भाड़ में मौका ही कब मिला था उसे अपनी लाल चुनरी और झब्बा-तिलरी, बाजू-बरेखी देखने का। उसने खटोली में अपने को अकेला पा कर, एक बार इधर-उधर देखा, फिर एक आँख से सोहगइला सीने से दबा कर, सुहा के घुँघुरूदार आँचल को हटाया, तो उसका मन एकाएक दौड़ कर नगीना के पास पहुँच गया।

—उसने अपनी गुड़ुई को कैसी पियरी पहनायी थी, गले में कैसी चमकदार गुरिया बाँध रखी थी और जब उसने माई से कहा तो माई कितना झिड़क रही थी..."चल-चल तो बड़ी आयी शान बघारने ! उसका बाप कमासुत है ! हर महिना पचास मनीअडर आ जाता है। तेरा बाप तो ऐसा बिघरमी है कि जब तक रहा, दारू-सराब पीकर रोज गालियाँ देता रहता और कमाई-धमाई तो दूर रही, गहना-गीठो भी बेच लिया, मेरे तन का। भगवान देह में जाँगर न देते तो कब की मर बिलाय गयी होती। दो बरिस हो गया परदेस गये, भेजा है एक छदाम कि पियरी पहनाएगी गुड़िया को...!

लेकिन आज वह बार-बार अपनी सुहा को देखती, बाजू पर

आँखें गड़ाती, पैर की बिछिया को निहारती, फिर उसके मन में उस सब को छूने की इच्छा होती। एक पाँत में सजा, उनकी दूकान लगा कर देखने को मन करता, पर सहसा सोहगइला से सटा हुआ हाथ, माँ की बात याद करा देता,—इसे छोड़ना नहीं, और वह दूसरे हाथ से उसे सीने से दबा कर, पहले वाले को आराम देने लगती। इसी बीच, कभी खटोली ढोने वाले कहार बोल उठते और उसका ध्यान टूट जाता, फिर दूसरा हाथ भी सोहगइला से जा चिपकता...

कहीं यह छूट न जाए, उसके हाथ से। वह डर कर अपनी सुहा के आँचल को खींच, अपना मुँह ढँक लेती।

उसे याद आतीं ठकुरानी बहू।—माई उन्हीं के यहाँ ले जा कर उसे एक कोने में डाल दिया करती थी और सारे दिन यहाँ से वहाँ चलती रहती। कभी बरतन माँजती, कभी कपड़े छाँटती, कभी कमरे साफ करती और बीच-बीच में कोई खाने की चीज उसे थमा जाती।

—एक दिन ठकुरानी बहू की बूढ़ी माँ कितनी नराज हो गयी थीं, मेरी माँ पर—"अरे रनियाँ की माँ। यह तेरी लाड़ली तो बात ही नहीं सुनती, किसी की। मैंने कहा, रनियाँ, जरा मेरा तलुआ तो सहला दे, बड़ी जलन हो रही है, तो आँख मटका कर चली गयी। यही सब सिखाती है क्या, इसे!" ठकुरानी बहू ने ढेर-सी सुपाड़ी के टुकड़े मुँह में भरते हुए कहा था और माई के हाथ की अगलियाँ गरम चिमटे की तरह मेरे कानों से सट गयी थीं। "सब की बात टालती रहती है। एक तो वैसे ही विपत की मारी ठहरी, दूसरे ऊपर से तू करेजा खाती रहती है।"

उस दिन से वह ठकुरानी बहू की सेवा में डाल दी गयी थी। काम क्या था उनके पास, बस कभी तौलिया उठा कर दे देती, तो कभी पानदान इधर से उधर कर देती, कभी छोटे-मोटे कपड़े छाँट देती और कभी-कभार किसी को बाहर से बुला लाती। लेकिन जैसे-जैसे वह बड़ी होती गयी, ठकुरानी बहू की बेटी हीरा को कभी पंखा हाँक देना, कभी बाहर घुमा ले आना; उसके काम में शामिल होता गया था।

—वे बोलती कम थीं तो क्या उसे चाहती भी नहीं थीं? माँ तो कहती थी, "खूब सेवा किये जाओ बिटिया, तुम्हें रानी की तरह विदा करेंगी। बड़ी नेक हैं हमारी बहू रानी।" लेकिन उस दिन उन्हें क्या हो गया था! थोड़ी-सी ही तो गलती हुई थी मुझसे, बस फराक ही तो हाथ से गिर कर पानी में भींग गया था, हीरा का। इतने जोर का झापड़!—रनियाँ की कनपटी आज भी झनझना उठी थी। —यह सोहगइला हाथ से छूट जाएगा तो माँ भी इसी तरह.. और उसने उसे, सीने से दबा लिया था। उसे लगा कि माँ यहीं कहीं खड़ी सब कुछ देख रही है, पर फिर उस नन्हीं-सी खटोली की दुनिया में अपना एक छत्र राज देख, उसका मन प्रसन्न हो गया था। सिर्फ कहारों की बोली रह-रह कर सुनाई पड़ती थी और अब हवा के गर्म झोंकों के दबाव से, उसके ओहार के दोनों ओर के पल्ले आपस में मिलने-मिलने को हो रहे थे। उसकी दुनिया हवा के थपेड़ों से छोटी होती जा रही थी।

कहार थक गये थे। एक पेड़ के नीचे खटोली रख कर छँहाने लगे थे। तभी जाने कौन-कौन...? वह इनमें से किसी को तो नहीं जानती। और माँ ने कहा भी था, "सबके सामने लजाना, मुँह न

खोलना, नहीं तो बड़ी नामहँसाई होगी।"—मुदा इस पियास को वह क्या करे, कैसे रोक ले, इसे...! वह सोच ही रही थी कि कोई बूढ़ा खाँस-खखार कर सवारी का ओहार हटाते हुए, लोटे में पानी और गुड़ के कुछ टुकड़े उसके आगे रख कर बोला, जैसे बाहर के लोगों को भी वह अपनी बात सुना देना चाहता हो, "अबही बहुत लड़िका है। बेचारी को सुधि-बुधि कहाँ!" फिर उसे सम्बोधित कर कहने लगा, "बचवा पी ले पानी! एक रोड़ा गुड़ भी मुँह में डाल ले, नहीं तो छूछे पेट करेज में लग जाएगा।"

कोई दूसरा बूढ़ा अपनी बीड़ी पर ज़ोर का कस खींचता हुआ, कह रहा था, "लड़की का जनम ही बिरथा है भाय! ई ससुरी जाने कहाँ जनम लेती हैं, जाने कहाँ पहुँच जाती हैं। हमार तो सोच कर करेज फट जाता है। बिटिया की बिदाई एक तरह की मउत ही जानो भयवा!"

रनियाँ पानी थामते-थामते परेशान हो गयी। कैसे सम्भाले इतना बड़ा लोटा और यह सोहगइला! उसने एक बार अपना हाथ बढ़ाया, पर फिर जैसे वह अपने से ही पीछे आ गया।

बूढ़ा वहीं बैठा था। कहार अपनी गाँजे की चिलम धधकाने लगे थे। कुछ लोग लोटा-डोर ले कर कुएँ की जगत पर जा बैठे थे। जब बहुत देर हो गयी और लोटा ओहार से बाहर नहीं आया, तो बूढ़े ने ओहार उठा कर देखा, लोटा वैसा ही भरा पड़ा था और गुड़ के टुकड़े इधर-उधर फैल गये थे।

बूढ़ा समझाता रहा। कहता रहा, "चार-छ दिन में वापस कर देंगे, तू तो अभी बच्ची है, अपना घर कोई पराया है। वहाँ भी तुम्हें माँ-बाप मिल जाएँगे। मेरे कोई दस छेटो-पेटो तो हैं नहीं।

कुल एक ही तो जोखन है, तुम्हें तो रानी बन कर रहना है, मेरे घर में।"

रनियाँ को जैसे कुछ भी समझ में नहीं आ रहा था। हाँ, यह बात वह सुन चुकी थी कि उसका ससुर बड़ा नेक है, बहुत चाहेगा उसे। इसलिए मन में बार-बार यही होता था कि क्या यह वही बूढ़ा तो नहीं है? और माँ की बात उसे बार-बार याद आती,—हरदम खाने-पीने का नाम न लेना, नहीं तो लोग कहेंगे, कभी खाने-पीने का सुख भी देखा है?—पर उसका हलक़ सूखता जा रहा था। बार-बार जबान को तालू से सटा कर वह गले की चिकनाहट का अंदाज लेती और सामने रखे, बड़े पीतल के लोटे में भरे पानी को देखती, तो उसे वे सारी बातें भूल जातीं। लेकिन यह क्या, क्षण भर को उसने दृष्टि हटाई ही थी कि लोटे का भरा-भराया पानी उसकी आँखों से ओझल हो गया। केवल गुड़ के टुकड़े बिखरे पड़े रह गये।

खटोली फिर अपने रास्ते पर चल पड़ी। कहारों के पैर से लग कर उड़ने वाली धूल के कण, ओहार के सामने के खुले हिस्से के अंदर आने लगे और गर्म हवा के झोंके जैसे किसी विषधर की फुफकार की तरह उसे डरावने लगने लगे। उसका प्रसन्न मन भारी हो गया। बस एक बात उसे बार-बार याद आने लगी,—जोखन अकेला ही तो है, तू तो रानी बन कर रहेगी, रानी...

और ठकुरानी बहू का सुंदर चेहरा उसकी आँखों में गड़ गया। बड़ी-बड़ी, काजल से भरी आँखें और सेंधुर से भरी माँग! मेरी माँग भी तो भरी है, मेरी भी आँखों में तो काजल लगा है। लोग कितनी बड़ाई करते हैं, ठकुरानी बहू की, मुँह तो किसी ने देखा हीन हीं, आज तक।

बस अपने कमरे-से-कमरे, न कहीं आना, न जाना। खाना-पीना, सब वहीं पहुँच जाए तो ठीक है, नहीं तो नहीं। एक गिलास पानी की भी जरूरत पड़ी तो...वह तड़प उठी। उसे मितली छूटने लगी। लगा अब वह बेहोश हो जाएगी...बेहोश हो जाएगी। लेकिन वह भी वैसी ही बहू बनेगी, उसी तरह का घर-दुवार होगा, वह भी कहीं नहीं जाएगी। चुपचाप अपने कमरे में बैठी रहेगी और अगर प्यास लगी तो..! प्यास...प्यास...उसकी चेतना डूबने लगी। जाने कैसे वह खटोली की रस्सी से उठँग गयी और हीरा बेबी की गुड़िया की शादी की एक-एक बातें, जैसे स्वप्न की तरह उसकी आँखों पर छा गयीं।

—कैसी धूमधाम थी! कैसे अच्छे-अच्छे गहने-कपड़े आये थे गुड़िया के लिए.और सोहगइला... ! उसका ध्यान एकदम अपने हाथों पर चला गया। क्षण भर के लिए प्यास का सारा ताप जैसे वह भूल गयी हो,— वह ब्याहता है, वह ससुराल जा रही है, यह उसका सुहाग है, सुहाग... और प्यास की तकलीफ से ढीले होने वाले उसके हाथ एकाएक कस गये, क्योंकि ठकुरानी बहू की एक-एक बात उसे याद आ रही थी। उन्होंने गुड़िया को साज कर, यही सब तो कहा था, जो आज माँ कह रही थी और यह बाजू-बरेखी, झब्बा-तिलरी, हाथ का कंगन, सुहा, सिर का घूँघट; यही सब तो गुड़िया का सजाव था...यही सब।

उसने इधर-उधर देखा।—पर यह तो कुछ भी नहीं दिखाई पड़ता। हाय राम, यह क्या हो गया!—उसका सिर बेहद चक्कर खाने लगा था, उसकी चेतना डूबने लगी थी पर हाथ सीने से लगे, दबे थे और सोहगइला जैसे पानी की अंतिम बूँद की तरह उसके कलेजे को सींच रहा था।

क्षण भर बाद, उसने फिर आँखें खोलीं और चाहा कि चिल्ला कर कुछ कहे, खटोली को रोके, पर खटोली तो कब की बरगद की छाँह में रुक गयी थी और पानी से भरे, उसी पीतल के बड़े लोटे को दोनों हाथों से उठा कर मुँह में लगाये, वह यह भूल ही गयी थी कि सोहगइला कब से उसके हाथ में नहीं है और व्यंग्य की एक तीखी हँसी उसके चेहरे पर बिखर गयी थी,—मेरा बाप भी तो अपने बाप का अकेला ही बेटा था, और माँ भी मेरे घर रानी ही बन कर आयी थी ! फिर माँ के कालिख में डूबे, रूखड़े हाथों की असंख्य काला रेखाओं के जाल में फँसीं, उसकी आँखें, दूर बैठी छोटी बहू और सामने लुढ़के सोहगइला; दोनों को देखने में असमर्थ होती जा रही थी क्योंकि वह अब बच्ची नहीं रह गयी थी और सामने खड़े भविष्य को पहचान रही थी।

# दौने की पत्तियाँ

हवा में कुछ गर्मी थी। आसमान का रंग कहीं भी धूमिल नहीं हुआ था।

सामने फैले विस्तृत भूखंड का हल्का नीलावरण, भोला की दृष्टि मे एकाग्र हो कर, चुपचाप बैठ गया था—बहुत ही गुम-सुम, जैसे प्रकृति का जीवन ही भूल से कहीं खो गया हो। सामने वाली नीम की पत्तियाँ भी किसी अनुशासन में स्थिर खड़ी थीं। भोला ने ऊपर से नीचे तक उस नीम के पेड़ को निहारा।—पाँच ही बरस हुए इसे लगाये, लेकिन कैसा छितनार हो चला है! गाँव में किसके पास इतना सुंदर नीम का पेड़ है! डालियाँ जैसे धरती को चूमने बढ़ी आ रही हैं और जड़ के पास का यह चबूतरा! उसका मन चहक उठा। लोगों की कही बातें याद आने लगीं।

—भई भोला का क्या कहना! इनका हर काम ही निराला होता है। देखो न, चबूतरा क्या है, जैसे सिलमिट से पलस्टर किया हो। भोला जहाँ न हाथ लगा दे।

—एक बिगहा भूँय में इतनी पैदा कहाँ? धरती तो सोना उगलती है, सोना, इसके लिए। कैसी साफ-सुथरी झोपड़ी बना रखी है। इस बीरान, भुतही जगह को गाँव की दुलहिन बना देना कोई मामूली बात है!

एक बीघे के पतले, लम्बे, नहरी खेत के एक सिरे पर भोला की

यह सृष्टि गाँव की दुलहिन के नाम से पुकारी जाती है। यही भोला का राज है। एक ओर साग-भाजी का कोइरार और दूसरी ओर एक झोपड़ी। उसके आगे एक छोटा-सा आँगन। आँगन के चारों ओर एक चौड़ी मेड़; जिसकी नाली में मर्सा, मकोय, तुलसी और दौना से लेकर, बैजंती, रातरानी, और गुलदावदी के पौधे लहलहाते रहते हैं। दौना भोला को बहुत प्रिय है। प्रायः अपने घर आये जाने-माने लोगों का स्वागत करते समय, वह दौने की पत्तियाँ भेंट करना नहीं भूलता।

लेकिन भोला को आज हो क्या गया है? क्यों उसकी आत्मा इतनी रिक्त हो गयी है? उसने कोई पाप नहीं किया, किसी का नुकसान नहीं किया, किसी का पेट नहीं काटा। वह मेहनत करके खाता है, पसीना जलाकर मिट्टी से अन्न जुटाता है। फिर उसके लिए दुख कैसा?

—मेरा बच्चा स्कूल से जल्दी क्यों नहीं लौट आता? गुलाबी कब तक साग बेचती रहेगी? क्या उसे मालूम नहीं...क्या उसे...भोला सोचते-सोचते झुँझला उठा,—उन्हें पता नहीं ही होना चाहिए, वरना इस तिनके की झोपड़ी में आग लग जाएगी। फिर कौन बुझाएगा, इसे? कोई सयाना बेटा भी तो नहीं, जो फिर से जोड़-तोड़ कर, घर-गृहस्थी सम्हाल ले। भोला ने माँथे का पसीना अँगुलियों से काछ कर, नीचे झिटक दिया। बगल में देखा तो मर्से की लम्बी-लम्बी, लाल बालियों पर गौरइयों का एक झुण्ड उतर आया था। पके दानों को फोरते हुए, उनके ठोरों से कुट-कुट की ध्वनि निकल रही थी। दूसरा दिन होता तो भोला उन्हें उड़ाता, खेत के

पास फटकने भी न देता। पर आज जैसे उसका मन इस आवाज़ के पीछे दौड़ चला। वह सुनता रहा, क्योंकि जब भाँटे और मिर्चे की तैयार फसल का एक पौदा भी अब उसका नहीं रहेगा, तब इन मसों में क्या होता है। उसके जी में आया कि वह चिल्ला पड़े, "खूब खाओ, मनमाना खाओ!" पर एकाएक गुलाबी को सामने आती देख, वह हड़बड़ा उठा।—ऐसा क्या करे कि...वह सोचने लगा और वहीं बगल में पड़ी खुर्पी उठा कर, मर्से की जड़ के पास जा बैठा।

"भगवान तोहें बइठे के नाहीं लिखे हैं का हो, जो पके मर्से की जड़ खुरपियाय रहे हो? कुछ रस-दाना भी किया या वैसे ही हो?" और वह तेज़ी से झोपड़ी के द्वार पर चली गयी। लेकिन भोला मन मारे उसी मर्से की जड़ में गड़ा रहा।

पाँच बरस पहले की वह अँधेरी, बरसती रात उसके अँधेरे मन में कलट कर थम गयी। हवा के गहरे थपेड़ों और पानी की बूँदों के तीर से उनके चेहरे बिंध रहे थे। हाथ को हाथ नहीं सूझता था। धरती पानी में गलती जा रही थी।

—काहे गाँव छोड़ रहे हो?...कहाँ जाओगे इतनी रात?... बनी-बनायी गिरहथी है भुल्लू के बाबू, सोच-समझ लो...! जहाँ चार जन रहेंगे, कुछ-न-कुछ...,फिर हम नीच जात के हैं...चाकरी करने वाले का मान-जान कब हुआ है! इतनी छोटी-सी बात के लिए गाँव छोड़ रहे हो।

—गुलाबो, अब तो वहीं रहेंगे, जहाँ चाहे सूखी रोटी ही मिले पर किसी की गालियाँ न सहनी पड़ें। भुल्लू को बचाये रहो!

उसी समय बिजली कड़क कर अँधेरे में धँस गयी थी और वे दोनों बच्चे को बीच में करके, एक दूसरे से सट गये थे। पानी की बूँदों

ने उन्हें ढँक लिया था। कैसी अनोखी छत थी वह—पानी की छत। भोला सोचते-सोचते सहसा रुक गया। गुलाबी कुरुई में बजड़ी का लावा और लोटे में रस लिये खड़ी थी।

"खर तो मार लेते। कहाँ की बिपत आ गयी थी जो बासी मुँह बैठे रह गये?"

भोला कुछ कहने ही जा रहा था कि गुलाबी जैसे विस्मय में बोल उठी, "अरे वह न देखो, सुथना-फुथना पहिरे कई लोग चले आ रहे हैं।"

भोला काँप कर रह गया।

"कहाँ?"

"वह देखो!"

भोला के शरीर में बिजली दौड़ गयी। वह उठ खड़ा हुआ

"तुम जा कर घर में बइठो...इंजिनियर साहब हैं।"

"तो का खाय जाएँगे?...बड़े चले पर्दा कराने।"

भोला को जाने क्यों क्रोध आ गया! उसका शरीर काँपने लगा। उसे लगा कि वह आपे से बाहर हो जाएगा, पर वह इतना गर्म तो कभी नहीं होता था। उसने विस्फारित नेत्रों से गुलाबी को देखा। वह डर कर सिमट गयी। कैसी थी वह शकल! उसने कभी इस चेहरे को नहीं देखा था। बढ़ी हुई दाढ़ी के नीचे झाँकने वाली नहर-सी लकीरें, आँखें धँसी-धँसी। सारा शरीर जैसे गन्ने के चुसे चेफे-सा सिकुड़ कर ऐंठ गया था।

भयानक से भयानक विपत्ति को हँस कर सहते हुए, मुसकराने-वाले भोला को यह क्या हो गया?

वह सोचने लगी,—इन खुरदरे हाथों में तो सोना बसता था। इनकी टूटी-फूटी थकी बोली से अमृत टपकता था। यह हो क्या गया, आज...भगवान यह क्या हो गया! वह जैसे किसी डाल से टूटे पत्ते की तरह बेसहारा हो गयी।

"तो मर यहीं खड़ी-खड़ी। लाज-हया तो सब धो कर पी गयी। यह घर-घर घूम कर तरकारियाँ बेचने का फल है।"

"यह सब क्या कह रहे हो, भुल्लू के बाबू!" और वह फूट-फूट कर रोने लगी।

पर भोला वहाँ रुका नहीं। वह जल्दी-जल्दी डग बढ़ाता आगे बढ़ गया और सिंचाई विभाग के इन्जीनियर साहब, छोटे साहब तथा ठाकुर साहब से बड़ी देर तक बातें करता रहा।

इधर प्रथम पंचवर्षीय योजना का समय समाप्त हो रहा है। दो लाख रुपए का काम बाकी रह गया है। काम नहीं हुआ तो रुपये डूब जाएँगे। योजना तो जनता के हित के लिए बनायी गयी है न! इसलिए किसी भी तरह काम हो जाना चाहिए और मौक़ा भी क्या सुनहरा मिला है कि चैती की जवान फसल, धरती पर पेगें मारने लगी है। अभी-अभी किसानों ने खेतों को दूसरा पानी दिया है। इस समय खेतों के बीच से नहर बनवाते समय, करीब साठ फुट चौड़ी ज़मीन पर फावड़े चला कर, नरम मिट्टी उलटवाने में, ठेकेदार को भी काफ़ी आराम है। जेठ-बैशाख होता, तो मिट्टी पत्थर होती। सिंची-सिंचाई लहलहाती हुई मिट्टी में फावड़े ऐसे धँसते हैं, जैसे सेब में दाँत। ऊपर से सहयोग और राष्ट्रीय हित का भाषण और घूँ-घूँ करके

गुर्रानेवाली जीपों की चहलकदमी के लिए ऐसी मुलायम सेजें कहाँ मिलेंगी ?

महीने भर से गाँव की सीमा में से नहर बन रही थी, पर जब तिवारी जी के बारह बिगहवा चक के ठीक कोने पर फीता गिर गया, तब सारा काम जहाँ-का-तहाँ धरा रह गया। सिंचाई मिनिस्टर इसी खित्ते के तो रहनेवाले हैं। पिछली बार चुनाव में तिवारी जी ने धन-जन से बड़ी मदद की थी, उनकी। कितने असामी तो गाय-बैल की तरह बाड़े में रात भर बंद किये रहे और सबेरे ही लारी में भर-भर कर उन्हें पोलिंग स्टेशन पहुँचा कर वोट ले लिया गया था। लोग कहते हैं, तिवारी जी ने कमाल कर दिया था। सिंचाई-मिनिस्टर तो इतने खुश कि तिवारी जी की अकल के गुलाम हो गये, तब से।

और जब नहर का सिरा आकर उन्हीं तिवारीजी के बारह बिगहवा के कोने पर गिरा, तब उनके तेवर चढ़ गये। काम बंद हो गया। पंडित जी रात की गाड़ी से फौरन लखनऊ के लिए रवाना हो गये। सबेरे ही; लोग कहते है, गाँव से तार से इन्जीनियर को लखनऊ बुलाया गया और आदेश हुआ कि नहर इधर-उधर घुमा कर खेत बचा लिया जाए।

इन्जीनियर बड़ा हँसता था, क्योंकि इस नन्हे-से काम के लिए इतना बड़ा पँवारा खड़ा करने की क्या ज़रुरत थी ? यही हजार रुपये और एक मुर्रा भैंस, जो अब दी है, तभी दे देते तो बिना लखनऊ गये ही काम हो जाता। उनका तो यही काम है। जिस पार्टी ने रुपये ज़्यादा दिये, उसकी ओर से फीते का रुख ज़रा-सा मोड़ लिया। फिर नये

शिकार, ताज़े रुपये और इस तरह गाँव-के-गाँव चंदा करके अपनी हद इस खूबसूरती से बचा लेते हैं कि नहर का पानी भी मिले और जगह भी खराब न हो। अब क्या कोई परायी सरकार है! यह तो रुपये के एक घर से दूसरे घर में जाने की बात हुई। जनता की सरकार, जनता को कैसे नाराज़ करे? उसको काम तो करना ही है, और श्रद्धा-भक्ति से जो भी मिल गया, उसे नकारें कैसे!

इधर गुलाबी के बड़े-बड़े मंसूबे हैं। उसने सुना है, नहर निकलने पर कोई अड्डा बनने को है। पानी भी पास रहेगा। खूब तरकारियाँ होंगी और वह उसी अड्डे पर तरकारियों की एक दूकान लगा देगी। —कौन मारा-मारा फिरे! तब तक तो अपना भुल्लू भी सायना हो जाएगा, पर आज एकाएक भोला की यह हालत देख कर उसका उत्साह ठंढा हो गया। अभी तो गाली-गुफ्ता ही है। कौन जाने, कभी हाथ भी उठाने लगें। उसने आँचल से आँसू पोंछे और रस-दाना उठा कर घर में लौट गयी। कब भूल्लू स्कूल से लौटा और कब जेब में बजड़ी का लावा भर कर गुल्ली-डंडा खेलने चला गया; उसे पता नहीं। हाँ, उसने बजड़ी की लिट्टी और बथुए का साग भल्लू को दिया, उसे इतना मालूम है।

सुबह जब उसके दरवाज़े पर शोर-गुल हुआ तब एकाएक हड़बड़ा कर वह उठ बैठी। वह रात लौटे ही नहीं और मैं ऐसी बावरी कि सो गयी बिना पता लिये। उसका मन थिर हो गया था।

लेकिन जब शोर बढ़ता गया, तब वह बाहर निकल आयी। बहुत

से आदमी देख कर वह चौंकी। क्या बात है ? घूम कर देखा, उसका खेत साफ हो चुका है। नहर आधे खेत तक पहुँच गयी है—पतले-लम्बे खेत के ठीक बीचों-बीच। मज़दूर कह रहे हैं, "यह तो ठीक नहर की ही नाप का खेत है।"

पचीसों फावड़े साथ ही उठ रहे हैं, साथ ही गिर रहे हैं। किसे पकड़ ले, किसे रोक ले, वह। पागल की तरह खेत में दौड़ने लगती है।

वहीं बगल में कैम्प के पास बहुत-से लोग किसी को घेरे खड़े हैं। पुलिस के आदमी पगड़ियाँ बाँधे घूम रहे हैं। गुलाबी दौड़ी जाती है तो देख कर धक् से रह जाती है।

"भल्लू के बापू, तुम ! क्या हो गया, तुम्हें!" वह दौड़ कर भोला के पास पहुँच जाती है और बिफर कर रोने लगती है।

कल भोला को जब यह निश्चय हो गया कि उसका खेत किसी तरह नहीं बच सकता, तब वह घर नहीं लौट सका। एक बार उसके मन में आया कि अब पंछी को बसेरा छोड़ ही देना चाहिए, लेकिन फिर वह पाँच वर्ष पहले वाली काली रात, उसके सिर पर भूत की तरह सवार हो गयी।

—मेरी यह नन्हीं-सी दुनिया कौन उजाड़ रहा है ? यह तिवारी ? हाँ यही, चलो उसी का गला घोट देता हूँ और वह रात के अँधेरे में डग बढ़ाता हुआ, कोठी के दरवाज़े पर पहुँच गया। दरबान सो रहे थे। तिवारी सामने ही सोया था। भोला के हाथ ऐंठे, पर इसने तो अपना खेत बचाया है। सब अपना बचाने की कोशिश करते हैं। सबके अपने स्वार्थ...पर न्याय ? न्याय तो अफसर करता है न !

—तो सारा दोस उस इन्जिनियर का है। धूर्त है, वह। वही सारे अनरथ की जड़ है। वह दौड़ता हुआ उसके कैम्प पहुँच गया। चपरासी सो रहे थे। कैम्प के द्वार के ठीक सामने पड़ी चारपाई पर इन्जीनियर की बीबी सोयी थी। उसका चेहरा लालटेन के हल्के प्रकाश में चमक रहा था। उसके होठों पर अजीब से मोह-स्वप्न की मुसकान व्याप्त थी। उसके माथे की बिंदिया...वह काँप गया।—गुलाबो, मेरी गुलाबो! कितना दुख सहती हो तुम मेरे साथ...

—जाने कहाँ की है यह बेचारी! मारी-मारी फिरती है! उसका सारा शरीर काँपने लगा। यह तो नौकर है...इसका क्या दोष?

—सरकार दोषी है, सरकार। उसकी भौंहों पर बल पड़ गये। होठ फड़कने लगे। वह घूम कर सिवान में भागना चाहता था कि उसे सहसा खयाल आया,—लेकिन सरकार को क्या मालूम कि मेरे पास वही एक खेत है, मैंने पाँच बरस में आधे पेट खा कर उसे खरीदा है!

वह रुक गया। लेकिन वह क्या करे? कहाँ जाए? सोचते-सोचते एक बार फिर वह कैम्प की तरफ घूमा, पर उसकी निगाह इन्जीनियर की पत्नी के चेहरे पर फिर थम गयी। नींद से बोझिल पलकों की छाया में रोशनी की पतली, काँपती रेखाओं को देखते देखते उसे कई मिनट लग गये। गुलाबी की कोमल बरौनियाँ और आँसुओं में तिरती, बड़ी-बड़ी, आम की फाँक-सी आँखें, उसके आगे नाच कर रह गयीं।—कितना सब्र होता है इन आँखों में! कितनी ममता, कितना त्याग!...वह भूल गया, सब कुछ भूल गया। इसी बीच जाग-जूग हो गया और लोग अपनी चारपाइयों से उठ कर दौड़े, तो भोला उन्हें वहीं खड़ा मिला।

भाग तो सकता था वह, पर भागा क्यों नहीं? यह आप खुद सोचिए। भूमिहीन, श्रमजीवी भोला, पुलिस, तिवारी जी, इन्जीनियर और सरकार की हिरासत में है, इसलिए चोर अथवा खूनी कुछ भी कह सकते हैं उसे, क्योंकि गुलाबी के पास तो अब दौने की पत्तियाँ भी नहीं रहीं।

# बातचीत

जैसे अखबारों में पहले पन्ने पर एक खास खबर दी जाती है, और उसके लिए पत्रकार, न जाने कितनी खबरों की जाँच-पड़ताल करते रहते हैं, वैसे ही, गाँवों में कुछ मौखिक पत्र निकलते हैं, जिनके पत्रकारों का काम रोज़ न रोज़ एक नया मसाला खोज निकालना और फिर उसमें नमक मिर्च लगा कर, हुक्के के धुएँ के साथ उड़ाना ही होता है। प्रायः इस काम को मनोयोग पूर्वक करने वालों के मुँह में दाँतों की कमी होती है, जिससे वे बातों को मसूढ़े से चबा-चबा कर सरस बनाते हैं और फिर बुजुर्गी का सुबूतनामा लगा कर, इस चौपाल से उस चौपाल तक फैलाया करते हैं। क्या करें, काम जो नहीं रहता, उन्हें।

कभी-कभी तो सितबिया धोबिन की चुनरी ही को लेकर बात खड़ी हो जाती है। फिर क्या, बूढ़े चौथी जवान गभड़ू बन जाते हैं। बिना दाँत के मसूढ़ों में एक मशीन की-सी गति आ जाती है और होंठ बार-बार एक दूसरे से टक्कर लेते रहते हैं। नन्हीं-नन्हीं कीचर से भरी आँखों में एक भाषा बोलने लगती है और जबान कतरनी की तरह कचर-कचर चलती रहती है।

"आज टिमकिया आया है न! देखा सितबिया का ठाट-बाट, जैसे सरग की तिरिया अपने गाँव में उतर आयी हो। अभी मैं उस ओर से आ रहा था तो जग्गू वाली कोलिया में मिल गयी। छब्बू बरई के यहाँ से पान खा कर लौट रही थी। बाँह में बाजू-बरेखी, कलाई

में कँगना और पैर में मोटे-मोटे झाँझ; मुँह में पान दबाये, मनमाना मुस्कुराती झमक-झमक चली जा रही थी।"

"लाज-हया तो सब धो-धा कर पी गयी है," गजाधर कुछ मुँह बिचका कर बोला और हुक्के से चिलम उतार कर ज़मीन पर उलट दी, फिर तमाखू के कोयले को अँगुलियों से फोरने लगा।

चौथी ने बड़े जतन से अपने गाढ़े के कुरते में हाथ डाल कर, सुर्ती निकालते हुए कहा, "नहीं भाई! तुम लोगों की दूसरी बात है। अभी शरीर में खून-पानी है और वह भी तो जवान है। किसी आसरे से तो नहीं लजाती। मुझको देख कर तो दीवार से सट कर, ऐसी सिकुड़ जाती है कि क्या कोई दुलहिन लजाएगी।"

रामू बरई वहीं चारपाई के पास एक मोढ़े पर बैठा था। घुटने तक की हल्के कत्थई रंग की धोती, कंधे पर एक गमछा और गले में तुलसी की मोटी जड़ की एक माला, दाढ़ी और सिर के सब बाल सफा। हाथ में एक तिनका लिये धूल को इधर-उधर करके खेत की नन्हीं-नन्हीं क्यारियाँ बना रहा था। वह एकाएक बोल उठा, "दादा बूढ़े हो गये, पर इनकी चुलबुलाहट न गयी। सारा गाँव तो हाय-हाय कर रहा है, ताल में धान की पकी-पकायी फसल थोड़े से पानी बिना चौपट हो रही है, इनको बस सितबिया का पान, मन-किया की धोती, बुधुआ-रनिया सनई के खेत में साथ-साथ घास काट रहे थे; न जाने क्या-क्या सूझते रहते हैं। अरे भइया, अगर दो दिन में पानी न बरसा तो पेट के लाले पड़ जाएँगे, लाले, फिर यह सब लहँगा-टिकुली बिक जाएगी। जब पेट भरता है, तभी संसार का सुख-सोहाग अच्छा लगता है।"

"अभी क्यों घबरा गये रामू! गाँधी टोपी के राज में जो न हो

जाए। जानते हो, जिस देश का राजा पापी होता है, वहीं झूरा पड़ता है, अकाल आता है, भुखमरी होती है। जल्दी-जल्दी गहना-गीठो बेंच कर ऊसर-पापर तो लिखा लिया। उसमें धान क्या होगा, खाक ! सरकार से कहो, पानी का भी इन्तिजाम करे !" गजाधर ने मुसकराते हुए चिढ़ाने के लिए कहा।

चौथी ने कहा, "अभी लगान भी बढ़ने वाली है रामू ! यह मत समझना कि जमीन मिल गयी तो राजा हो गये। जब सरकारी करिन्दा वरंट लेकर घर के सामने खड़े होंगे, तब दुगुना मजा मिलेगा। पंचाइत का सुख तो भोग लिया, अब इसका भी देख लेना।"

रामू ने गदोरी पर सुर्ती रखते हुए कहा, "हर बिंधा हमी को तो पिसना है, दादा ! मरेंगे, जरेंगे, अन्न उपजाएँगे पर मजा दूसरे मारेंगे। देखो न ! पंचाइत बनी थी किसानों के फायदे के लिए, सो सरपंच हो ही गये गयादीन ठाकुर। खूब मुट्ठी गरम होती है।"

चौथी ने नीचे के होठों को तालू से सटाते हुए व्यंग्य किया, "क्या समझते थे जग्गी हो जाता सरपंच ?"

रामू की आँखें ज़मीन में धँस गयीं, जैसे कोई वज्र-सी धरती पर फावड़े से प्रहार करके उसकी उर्वरा छाती के अंधकार को सूरज की सुनहरी किरणों की नोक से बेधता चला जा रहा हो— रामू देखता गया, देखता गया...

—जग्गी का बाप चोर था और गयादीन ठाकुर के बाप से उससे दाँत काटी रोटी की दोस्ती थी। क्या शरीर दी थी भगवान ने उसे कि घोड़े को भी पीछे छोड़ जाए। घर की साधारण दीवारों को तो वह

चौफाल में कूद जाता। एक-एक रात में हज़ारों का सोना-चाँदी ला देना, ठाकुर के एक इशारे पर किसी को बना-बिगाड़ देना; उसके बायें हाथ का काम था।

जमुनापार के डाँके की कहानी उसकी आँखों के आगे नाच गयी।—सावन की अँधेरी, काली रात में महाजन की दुमंजिला कोठी पर से जब वह जेवरों का बक्सा लेकर चला, तो लोगों ने नीचे चारों ओर से मकान घेर लिया...जग्गी ने सोचा-विचारा, जेवरों को पीठ पर गमछे से बाँध लिया और ऊपर से लाठी ले कर कूद पड़ा। एक नहीं, दस-दस लाठियाँ तो एक साथ उसके ऊपर गिरी होंगी, पर जब वह उठा तो मिनटों में मैदान साफ हो गया। लोगों ने पीछा किया, पर उसने तरह नहीं दी। एक मील तक रुक-रुक कर लाठी चलाता, जमुना तक आया और फिर नदी में कूद पड़ा।

—दूसरे दिन पुलिस की पगड़ी से सारा गाँव लाल हो गया। कोई घर के बाहर तक नहीं निकलता था, पर वाह रे ठाकुर और वाह रे शान! दरवाज़े पर कड़ाहियाँ चढ़ गयी थीं। पुलिस वाले खा-पी रहे थे और जग्गी का बाप वहीं ठाकुर के पास बैठा, चिलम पीता रहा। शाम हुए थानेदार ने ठाकुर को बुला कर कहा, "हमारे पास घोड़ा नहीं है, ठाकुर!"

—ठाकुर ने कहा, "कल सूरज निकलने से पहले पहुँच जाएगा।"

चौथी ने बात जोड़ी "क्यों चुप हो गये रामू! जग्गी याद आ गया क्या? भाई, मेरे कहने का बिलकुल मतलब यह नहीं है कि वह चोर है। हम लोग तो सब जानते हैं न! यह गयादीन की बेइमानी है, पर बदनामी तो हो ही गयी। वह चोरी की ही तो सजा भुगत रहा है।"

रामू ने सिर ऊपर करते हुए कहा, "चाहे जो कहो दादा। पर जग्गी...'बड़ा दिलेर, बड़ा ईमानदार; यही न !" दादा ने बीच ही में बात छीन ली, "पर जानते हो, उसका बाप यहाँ का मशहूर चोर था। गयादीन ठाकुर के बाप से बड़ी दोस्ती थी, पर बुढ़ाई समय ठाकुर ने किसी दुश्मन का खलिहान फूँकने की बात की। इस पर वह बिगड़ गया। फिर क्या था, ठाकुर जलभुन गये। मौका ढूँढ़ने लगे। एक दिन एक चोरी की जाँच आयी, तो उसके घर की तलाशी करा दी, उसमें सेंध मारनेवाली सेंबरी मिल गयी और बुड्ढे को एक साल की सजा हो गयी।

"ठाकुर की भी हालत उतनी अच्छी नहीं रह गयी थी। इन्हीं गयादीन ठाकुर की एक बड़ी बहन थी—जवान-सामरथ। उसकी शादी करनी थी, पर टका पास में नहीं था। बड़े आदमी ठहरे, कम-से-कम दस-बीस हज़ार तो तिलक ही के लिए चाहिए। लड़की जग्गी के बाप को काका कहा करती थी और जब वह जेल जाने लगा तो लड़की दरवाजे पर खड़ी-खड़ी बहुत देर तक रोती रही। जग्गी भी वहीं खड़ा था। ठाकुर को पकड़ कर रोने लगा, पर तीर कमान से निकल चुका था। ठाकुर बहुत पछताये।

"जग्गी का बाप उन्हीं दिनों जेल से छूटा, जब लड़की की शादी ठीक हो गयी थी। तिलक के बदले ठाकुर ने बीस हज़ार का जेवर देना ही मान लिया था पर वह कहाँ से आता। जग्गी का बाप तो अब नाराज़ न था। एक दिन लड़की घर से निकली तो वह सामने पड़ गया। एकाएक उसके मुँह से निकल पड़ा, 'पाँव लागीं काका !' और बूढ़े का कलेजा पसीज गया। उसने आँख उठा कर देखा, लड़की बदल गयी है। हाथ-पाँव में हल्दी लगी है। कलाई में कंगन

बँधा है। बूढ़ा रो पड़ा और लड़की भी खड़ी-खड़ी रोती रही।

"बूढ़े ने अपने को सँभालते हुए कहा, 'फिकर न करना बिटिया, अभी तो मैं जिन्दा हूँ, जब मेरी जरूरत हो, कहला भेजना।'

"ठाकुर बगल में बैठे यह बातें सुन रहे थे। उनका मन अपने पिछले पापों के कारण जल कर राख हो गया था, पर एकाएक उसकी बातें सुन कर, उनका जी भर आया। वे दौड़ कर जग्गी के बाप के गले से सट कर फफक-फफक कर रोने लगे।

"बूढ़े के मुँह से इतना ही निकला, 'भैया मैं चोर ही नहीं, आदमी भी हूँ। तुम्हारी सब दिक्कतें समझ रहा हूँ पर मुझे अपने से अलग मत समझना। शादी की तैयारी करो, सारे जेवरों का इन्तिजाम मैं करूँगा।'

"जब शादी का दिन आया तो सारा गाँव तमाशा देखने जुटा था रामू! लोग समझते थे, आज ठाकुर बेआबरू हो जाएगा, पर एकाएक जब जग्गी के बाप ने जेवरों की पेटियाँ खोलनी शुरू कीं तो सब दंग रह गये।"

चौथी ने एक ज़ोर की दम लगायी और हुक्का फेर दिया। गजाधर ने हुक्का थामते हुए कहा, "जग्गी तो चोर नहीं था, चौथी दादा, फिर कैसे पुलिसवालों ने उसे फँसा दिया!"

"तुम नहीं जानते बेटा अभी, अरे यह सारी बुराई रुपयों की है। जिसे लालच न लग जाए, मद की। जग्गी ने जिस इज्जत-बात से गाँव में जिनगी बितायी, क्या कोई माई का लाल बिताएगा, मुदा गयादीन को तो जानते ही हो; दूसरे की बहू-बेटियों पर निगाह रखना,

रात को खेत कटवा लेना, खरिहान फुँकवा देना; इसी में तो इनकी ठकुरी है। फिर आज कल सरपंच जो हो गये हैं। किसी खेत-बारी के झगड़े में तकरार हो गयी जग्गी से, फिर उन्होंने बदला निकालने का यही उपाय निकाला और सबूत भी यह कि जिसका बाप चोर था, वह भला इतना नेक कब होने लगा।"

रामू ने कहा, "मुझको तो बस इतनी ही फिकिर है भैया कि बेचारे की बीबी भी इसी बीच चल बसी और उसका मुँह भी न देख पायी।"

कुआर की चिलचिलाती धूप उतार पर हो चली थी और नीम की छाया, धीरे-धीरे पूरब की ओर खिसकने लगी थी। रामू के ऊपर सूरज की किरणें पड़ने लगी थीं। उसने मोढ़ा खिसका कर छाया में कर लिया।

गजाधर भी उठे कि चारपाई भी खींच कर छाया में कर लें। चौथी दादा भी उठ खड़े हुए और कहने लगे, "जग्गी तो अब जल्दी ही छूट कर आ जाएगा, रामू!"

"हाँ, एक महीने से भी कम रह गये हैं दादा! यदि छुट्टी-वुट्टी कटी तो शायद दो ही चार दिन में आ जाए।" और रामू भी उठ खड़ा हुआ।

गजाधर ने कहा, "बैठो भाई!"

पर रामू ने कहा, "नहीं, अब चली-चला हो, खाना-पीना भी तो नहीं हुआ है?"

"क्या खाना-पीना होगा भइया! इस ठाले-ठूली में भला गाँव भर में कहीं दोपहर को आग जलती है! यही रस-दाना पर कट

जाता है। मुझसे तो वह भी नहीं होता। पतोहुओं ने किसी दिन दया दिखाई, तो दाने को पीस-पास कर बुकनी बना दी, नहीं तो रस ही पी कर रह जाना पड़ता है। दाँत क्या गये, खाने-पीने का सारा सवाद ही चला गया।" चौथी दादा ने कहा और गमछे की खूँट से सुर्ती की गर्द नाक में भरते हुए, सूरज की ओर देख कर, दो छींकें लीं और घर की ओर चल पड़े।

# हंसा जाई अकेला

वहाँ तक तो सब साथ थे, लेकिन अब कोई भी दो एक साथ नहीं रहा। दस-के-दसों अलग-अलग खेतों में अपनी पिंडलियाँ खुजलाते, हाँफ रहे थे।

"समझाते-समझाते उमिर बीत गयी, पर यह माटी का माधो ही रह गया। ससुरू मिलें, तो कस कर मरम्मत कर दी जाए आज!" बाबा अपने फूटे हुए घुटने से खून पोंछते हुए ठठा कर हँसे।

पास के खेत में फँसे मगनू सिंह हँसी के मारे लोट-पोट होते हुए उनके पास पहुँचे।

"पकड़ तो नहीं गया ससुरा? बाप रे...भैया, वे सब आ तो नहीं रहे हैं?" और वह लपक कर चार कदम भागे, पर बाबा की अडिगता ने उन्हें रोक लिया। दोनों आदमी चुपचाप इधर-उधर देखने लगे।

सावन-भादों की काली रात, रिम-झिम बूँदें पड़ रही थीं।

"का किया जाय, रास्ता भी तो छूट गया। पता नहीं कहाँ हैं, हम लोग।"

"किसी मेंड़ पर चढ़ कर, इधर-उधर देखा जाय। मेरा तो घुटना फूट गया है।"

"बुढ़वा कैसे हुक्का पटक के दौड़ा था!"

"अरे भइया, कुछ न पूछो !" मगनू हो-हो...हँसने लगे। इसी बीच ज़ोर की आवाज़ सुनाई पड़ी :

हंसा जाई अकेला, ई देहिया ना रही।
मल ले, धो ले, नहा ले, खा ले
करना हो सो कर ले,
इ देहिया...

दस-एक बीघे के इर्द-गिर्द, अँधेरे और भय में धँसी हुई पूरी मण्डली सिमट आयी। चेहरे किसी के नहीं दिखाई पड़े, पर हँसी के मारे सबका पेट फूल रहा था। उसी बीच थूक घोंटने की-सी आवाज़ करता हुआ, वह आया और ज़ोर से हँसने लगा।

"होई गयी गलती भइया ! मैं का जानूँ कि मेहरिया है। समझा, तुम में से कोई रुक गया है।

मगनू ने कहा, "सरऊ, साँड़ हो रहे हो, अब मरद-मेहरारू में भी तुम्हें भेद नहीं दिखाई पड़ता ?"

"नाहीं, भाय, जब ठोकर खाके गिरने को हुये न, मैंने सहारे के लिए उसे पकड़ लिया। फिर जो मालूम हुआ, तो हकबका गया। तभी बुढ़वा ने एक लाठी जमा दी। खैर कहो निकल भागा।" उसने झुक कर अपनी टाँगों पर हाथ फेरा। नीचे से ऊपर तक झरबेरी के काँटे चुभे हुए थे।

"ससुरे को बीच में कर लो !" बाबा ने कहा।

मगनू कहने लगे, "चलो मेहरारू तो छू लिया, ससुरे की किस्मत में लिखी तो है नहीं !

उसे लोग हंसा कहते हैं, काला-चिट्ठा, बहुत ही तगड़ा आदमी है। उसके भारी चेहरे में मटर-सी आँखें और आलू-सी नाक, उसके व्यक्तित्व के विस्तार को बहुत सीमित कर देती हैं। सीने पर उगे हुये बाल, किसी भींट पर उगी हुई घास का बोध कराते हैं। घुटने तक की धोती और मारकीन का दुगजी गमछा उसका पहनावा है। वैसे उसके पास एक दोहरा कुर्ता भी है, पर वह मोके-झोंके या ठारी के दिनों में ही निकालता है। कुर्ता पहन कर निकलने पर, गाँव के लड़के उसी तरह उसका पीछा करने लगते हैं, जैसे किसी भालू का नाच दिखाने-वाले मदारी का।

"हंसा दादा दुलहा बने हैं, दुलहा!" और नन्हें-नन्हें चूहों की तरह उसके शरीर पर रेंगने लगते हैं। कोई चुटइया उखाड़ता है, तो कोई कान में पूरी-की-पूरी अँगुली डाल देता है। कोई लकड़ी के टुकड़े से नाक खुजलाने लगता है, तो कोई उसकी बड़ी-बड़ी छातियों को मुँह में लेकर, हंसा माई, हंसा माई, का नारा लगाने लगता है। इसी बीच एक मोटा सोटा आ जाता है, वह हंसा के कंधे से सटा कर लगा दिया जाता है और हंसा दो-एक बार उस पर अँगुलियाँ दौड़ा कर, आलाप भरते-भरते रुक कर कहता है "बस न!"

और लड़के चिल्ला पड़ते हैं, "नहीं, दादा! अब हो जाय!" कोई पैर से लटक जाता है, तो कोई हाथ से। फिर वह मगन हो कर गाने लगता है, "हंसा जाई अकेला, ई देहिआ ना रही..."

उस दिन बारह बजे रात को गाँव लौट कर, हंसा सीधे बाबा के दालान में आया। लालटेन जलायी गयी। हंसा अपनी पिंडलियों में

धँसे झरबेरी के काँटों को चुनने लगा। जैसे जाड़े में चिल्लर पड़ जाते हैं, उसी तरह हंसा की टाँग में काँटे गड़े थे।

बाबा ने कहा, "कहाँ जाएगा ठोंकने-पकाने इतनी रात को, यहीं दो रोटी खा ले!" और झरबेरियों के काँटे देखे, तो उन्हें जैसे आज पहली बार हंसा की भीतरी जिन्दगी की झाँकी दिखाई दी।—इतनी खेत-बारी, ऐसा घर-दुआर, पर एक मेहरारू के बिना बिलल्ला की तरह घूमता रहता है। बाबा उठ कर हंसा की पिंडलियों से काँटे बीनने लगे।

उसे रतौंधी का रोग है। इसीलिए रात को वह गाँव से बाहर नहीं जाता। वह तो मजगवाँ का दंगल था, जो उसे खींच ले गया। बाबा सरताज हैं पहलवानों के, भला क्यों न जाते! बेर डूब गयी वहीं, चले तो अँधेरा घिर आया था। पाँच मील का रास्ता था। हंसा दस लोगों की टोली के बीच में चल रहा था। कई बार उसके पाँव लोगों से लड़े, तो लोगों ने गालियाँ दीं और उसे पीछे कर दिया। हंसा गालियों का बुरा नहीं मानता। वह बहुत-सारे काम गाली सुनने के लिए ही करता है। गाँव के बूढ़ों-बुजुर्गों की इस दुआ से उसे मोह है।

वह पीछे-पीछे आ रहा था। रास्ते में एक गाँव आया, तो गलियों के घुमाव-फिराव में वह जरा पीछे रह गया। एक झोपड़ी के आगे, एक बूढ़ा बैठा हुक्की गरमाये था। उसकी जवान बहू किसी काम से बाहर आयी, तो दस आदमियों की लम्बी कतार देख कर, बगल में खड़ी हो गयी। फिर हंसा के आगे से वह निकल जाने को हुई, तो संयोग से हंसा के पाँव उससे लड़ गये और अँधेरे में गिरते गिरते वह हंसा के बाजुओं में आ गयी। बहू चीख उठी। बूढ़ा हुक्की

फेंक कर डंडा लिये दौड़ा। लेकिन हंसा निकल गया। दूसरा डंडा उसकी बहू की ही पीठ पर पड़ा। यह गये, वह गये और सारी मण्डली रात के अँधेरे में खो गयी। सबकी तो आँखें साथ दे रही थीं, पर हंसा खाइयों-खंदकों में गिरता-पड़ता भागता रहा।

बाबा काँटा बीनते जा रहे थे। हंसा अपनी मटर-सी आँखों को बार-बार अपने भालू के-से बालों में धँसाता—हाथ को काँटे मिल जाते, पर आँखें न खोज पातीं। रह रह कर रास्ते की वह घटना उसके सामने नाच जाती।—क्या सोचती होगी बेचारी? और वह बाबा की ओर देखने लगता।

"बड़ी चूक हो गयी, भइया। समझो, निकल भागे किसी तरह, नहीं तो जाने का कहतो दुनिया? हमें तो यही सोच कर और लाज लग रही थी कि तुम भी साथ थे।"

"अरे, यह क्या कहता है, हंसा!"

"यही कि आपके साथ ऐसे लोग रहते हैं। कितना नाव-गाँव है! कितनी हँसाई होती!"

हंसा कभी कोई बात सोचता नहीं, पर आज बार-बार उसका दिमाग़ उलझ जाता था। अगर भइया चाहें...तो...

इसी बीच आजी पूड़ियाँ थाल में परसे बाहर आयीं। हंसा हड़-बड़ा कर उठ गया। बहुत दिन पर भउजी को देखा था। रात न होती, तो वह बाहर क्यों आतीं। उसने सलाम किया। थाल थामने ही जा रहा था कि उन्होंने मजाक कर दिया, "कहीं डड़वार डाके रहे का, बबुआ, जो काँटा बिनाय रहा है!"

"कुछ न कहो, भउजी!" हंसा कह ही रहा था कि बाबा बोल

उठे, "फँसी गया था, हंसवा आज, वह तो खैर मनाओ, बच गया, नहीं तो वह पड़ती कि याद करता ! एक औरत को इसने...

"अब हँसी-ठिठोली छोड़के, बियाह करो ! जब तक देह कड़ी है, दुनिया-जहान है, नहीं तो रोटी के भी लाले पड़ जाएँगे। कहते क्यों नहीं अपने मइया से ? गूँगे-बहरे, कुत्ते-बिल्ली सबका तो बियाह रचाते रहते हैं, पर तुम्हारा धियान नहीं करते। खेत-बारी, जगह-जमीन सब तो है।"

बाबा कुछ नहीं बोले, लगा सेंध पर धर गये हों। आजी जाने लगीं, तो बाबा ने तेल भेजने को कहा।

तेल की कटोरी ले कर हंसा बाबा के पैताने जा बैठा।

"अपने पैरों में लगाओ न हंसा ! दरद कम हो जाएगा।"

"गजब कहते हो, भइया ! अरे लगाया भी है कभी तेल !" और वह बाबा की मोटी रान पर झुक गया।

"मनों तेल पी गयीं ये रानें। कितने तो तेल ही लागाकर पहलवान हो गये..." हंसा कहने लगा।

बाबा चुप पड़े रहे। ओरउती से लटकी हुई लालटेन में गुल पड़ गया था, धुएँ से उसका शीशा काला पड़ चुका था और कालिख ऊपर उड़ने लगी थी।

हंसा उठा और बत्ती बुझा कर लेट गया।

भउजी की बात हंसा के कानों में गूँज रही थी,—जब तक देह कड़ी है...हंसा ने करवट लेते-लेते, हाथ से बूढ़े के डंडे की चोट का

अंदाज लिया और भुनभुनाने लगा, "जान-बूझ कर तो कुछ नहीं किया। हम तो भइया की तरह मेहरारू को आँख उठा कर भी नहीं देखते। ई रतौन्हीं साली जो न कराये !" उसने इधर-उधर आँख चलायी, पर कुछ नहीं—सब मटमैला, धुंध।

पाला पड़े, चाहे पत्थर, काम से खाली होकर हंसा बाबा के पास ज़रूर आएगा। कभी देश-विदेश की बात, कभी महाभारत-रामायण की बात।। लेकिन 'गन्ही महत्मा' की बात में उसे बड़ा मज़ा आता है। किसी ने उसे समझा दिया है कि गाँधी जी अवतारी पुरुष हैं।

उस दिन दालान में कोई नहीं था। शाम का वक्त था। बाबा की चारपाई के पास बोरसी में गोहरी सुलग रही थी। जानवर मन मारे अपनी नाँदों में मुँह गाड़े थे। रिम-झिम पानी बरस रहा था। कलुआ पाँवों से पोली जमीन खोद कर, मुकुड़ी मारे पड़ा था। बीच-बीच में जब कुटकियाँ काटतीं, तो वह कूँऽ...कूँऽ करके, पाँवों से गर्दन खुजाने लगता। इसी समय एक आदमी पानी से लथ-पथ, कीचड़ में अपनी साइकिल को खींचता आया और जैसे ही साइकिल खड़ी करके दालान में घुसने लगा, हंसा ने कहा, "जै हिन्न की, गणेस बाबू !"

"जै हिन्द, हंसा भाई, जै हिन्द !"

उसने अपने झोले से नोटिसों का पुलिन्दा निकाल कर, बाबा के आगे रख दिया। हंसा बाबा की गोड़वारी बैठ गया। बाबा नोटिस पढ़ कर बोले, "कैसे होगा, बरखा-बूनी का दिन है ?"

हंसा कुछ समझ नहीं सका। जब उसका पेट फूलने लगा, तो वह बोल बैठा "का है भइया !"

"कोई सुशीला बहिन आज यहाँ गांधी जी का संदेश सुनना चाहती हैं। जिला कमेटी की नोटिस है।"

"का लिखा है नोटिस में?" हंसा मुँह बा कर उसे देखता बोला, "तनी बाँच दो, भइया। गवनई भी न होगी?"

"अरे वही, जागा हो बलमुआ गांधी टोपीवाले..."

हंसा ने खूँटी पर टँगी ढोलक उतार कर गले में लटका ली और एक ओर पड़े फटहे झंडे को ले कर एक लाठी में टाँग लिया। दो बार ढोलक पीटी। फिर,—जागा हो बलमुआ, गन्ही टोपीवाले आय गइलैं...टोपी वाले आय गइलैं...गा कर, ढोलक पर धड़म्-धड़ाम्, धुम्-धुम्...धड़म्-धड़ाम्, धुम्-धुम्...

मिनटों में ही पचासों लड़के आ जुटे। चल पड़ा हंसा का जलूस।

"सुसिल्ला की गवनई, जौने में बीर जवाहिर की कहानी है..."

"दल-के-दल लरिका-बच्चा सब...बोलो, बोलो, गन्ही बाबा की जय!"

और फिर, जागा हो बलमुआ...और हंसा की ढोलक गमकती रही।

क्षण भर में ही जैसे सारे गाँव को हंसा ने जगा दिया हो। जिधर से देखो, लोग चले आ रहे हैं। लड़के गांधी बाबा को क्या जानें, उनके लिए तो हंसा ही सब कुछ था। एक उनके आगे झंडा तान कर कहता, "बोलो, बोलो, हंसा दादा की...!"

कुछ कहते, 'जै', और कुछ, 'छै', फिर ज़ोर की हँसी चारों ओर छा जाती।

कुछ बूढ़े नाक फुलाते हुए, सुरती की नास ले कर, अपने सुतालय के ढेरे पर तेज़ चक्कर दे कर कहते, "मिल गया ससुर को एक काम ! गन्ही बाबा का पायक काहे नहीं हो जाता। कौनों कँगरेसी जात-कुजात मेहरारू मिल जाती। गन्ही को कोई विचार थोड़े है, चमार-सियार का छुआ-छिरका तो खाते हैं।"

हंसा को फ़ुरसत नहीं है। बाबू साहब का तकरपोस और बाबू राम का चमकउआ चादर तो आना ही चाहिए।

बाबा चुपचाप बैठे हैं। धीरे-धीरे गाँव सिमटता आ रहा है। दालान भरता जा रहा है। अँधेरे की गाढ़ी चादर फैलती जा रही है। रिम-झिम पानी बरस रहा है। चार लालटेनें जल रही हैं।

"बुला तो लिया पानी-बूनी में। हल्ला भी पूरा मचा दिया। पर ठहरेंगी कहाँ सुशीला ? कुछ खाना-पीना..."

"आने पर देख लेंगे। अपना घर तो खाली ही है। खाने की भी चिन्ता न करो ! घी है ही, पूड़ी-ऊड़ी बन जाएगी।" कहता हुआ हंसा बाहर निकला।

हंसा सँभाल-सँभाल कर चल रहा था—अँधेरे की वही धुंध, वही मटमैलापन। आखिर वह क्या करे कि उसे दिखाई पड़ने लगे। वह एक बच्चे की सहायता से किसी तरह बाबूसाहब के दलान के सामने पहुँच गया। पहाड़-से तखत को सिर पर बिठई रख उठा लिया और किसी तरह रेंगता-रेंगता बाबा के दालान आ पहुँचा।

बाबा बहुत बिगड़े, "ससुरा मरने पर लगा है।"

हंसा को यह जान कर बड़ी खुशी हुई कि सुशीला जी आ गयी हैं। वह बाबा के पास बैठ, उनकी बातें बड़े ध्यान-पूर्वक पीने लगा।

सुशीला जी हंसा के ठीक सामने बैठी थीं। लालटेन जल रही थी, पर वह देख नहीं पाता था कि वह कैसी हैं!

—आवाज तो कड़ी है, और गन्ने के ताजे रस-सी महक, कहाँ से आ रही है!

हंसा खो गया। सुशीला का साल-भर पहले का गाना, 'जागा हो बलमुआ गाँधी टोपी वाले आय गइलैं...,उसके होंठों पर थिरक उठा।—साँवला-साँवला-सा रंग था, लम्बा-छरहरा बदन, रूखे-रूखे-से बाल और तेज आँखें। कैसा अच्छा गाती थीं!—हंसा सोचता रहा।

इसी बीच कीर्तन-प्रवचन हो गया। सुशीला जी ने भी भाषण दिया और सारी ग्राम-मण्डली, 'बिना विद्या के भारत देश, दिन-दिन होती है तेरी ख्वारी रे।' गुनगुनाती वापस जाने लगी। हंसा खोया बैठा रहा। खजड़ी की डिम्-डिम् और झाँझ की झंकार उसके कानों में गूँजती रही। सुशीला का पैना स्वर उसके हृदय को बेधता रहा, और दंगल की शामवाली घटना का भी उसे बार-बार ध्यान आता रहा।—देखो तो इन आँखों को, जो न करा दें!—और उसकी नसों में रक्त की झनझनाहट भर जाती। एकाएक, 'गन्ही महात्मा की...' सुन कर, वह चौंक पड़ा और ज़ोर से चिल्ला पड़ा, 'जय...जय...'

बहुत रात बीत चुकी है। हंसा के घर में पूड़ियाँ छनने की तैयारी हो रही है। आटा गूथा जा रहा है। तरकारी कट रही है। आग जल रही है। पर भीतर के कमरे की भंडरिया से घी कौन निकाले? हंसा वहीं इधर-उधर डोलता है। उसकी आँखें सुशीला जी की आवाज का पीछा कर रही हैं। सुशीला जी कभी-कभी संकोच में पड़ती हैं, पर

हंसा के चौड़े सीने पर उगे हुए बालों के जंगल में वह खो जाती है। कितना पौरुषी आदमी है !

लेकिन हंसा के आगे वह एक छाया-मात्र है, जिनका बस रूप नहीं है, आगे सब-कुछ है।—मीठी-मीठी, थकनभरी आवाज और गन्ने के ताजे रस-जैसी सुगंध। वह बड़ा खुश है। एक औरत के रहने से घर कैसा हो जाता है ! कितना अच्छा लगता है !...वह सोच ही रहा है कि घी की माँग होती है। हंसा उठता है, पर चारपाई से ठोकर खा कर गिर पड़ता है। सुशीला जी दौड़ कर उसे उठाती हैं। हंसा मारे लाज के डूब जाता है।

धत् तेरी आँखों की ! और वह जल्दी से उठ खड़ा हुआ।

सुशीला जी उसका हाथ पकड़े थीं, "चोट तो नहीं आयी ?"

घुमची की तरह की आँखें मुलमुला कर हंसा हँसता है। उसके रोएँ भभर आते हैं। उसका कलेजा धड़कने लगता है।

कहार कहता है, "हँसा दादा को रतौन्ही है, रतौन्ही।"

"रतौंधी ! तो बताओ, कहाँ है घी ? मैं चलती हूँ, साथ।"

मेनका के कंधे पर विश्वामित्र के उलम्ब बाहु। सावन की अँधियारी और बादलों की रिम-झिम। बीच-बीच में हवा का सर्द झोंका।

दोनों आँगन पार करते बूँदों में भींगते हैं। पीछे से आवाज़ आती है, "लालटेन दूँ ?"

"एक ही तो है। रहने दो, काम चल जाएगा।"

घर की अँधेरी भंडरिया। दोनों भटकते हैं। हंसा कुछ बताता

है। सुशीला जी कुछ सुनती हैं। आँख कुछ देखती है। हाथ कुछ टटोलते हैं। बहरहाल, पता नहीं, कहाँ क्या है ?

अँधेरे में जैसे आँख, तैसे बेआँख। दोनों को सहारा चाहिए। कभी वह लुढ़कता है, कभी वह लुढ़कती हैं, और दोनों दृष्टिवान हो जाते हैं—दिव्यदृष्टिवान।

सुबह कुत्तों की झाँव-झाँव के बीच, कारवाँ आगे बढ़ गया। बैलों की घंटियाँ टुनटुनायीं, भुजंगे बोले और बाबा ने उठ कर अपना छप्पन पतरीवाला बाँस का छाता उठाया और ताल की ओर चल पड़े, निरुआही हो रही थी।

रास्ते में मगनू सिंह मिल गये, "लग गयी पार हंसवा की नाव !"

"क्या हुआ ?"

"कुछ न पूछो, भइया। तुम्हें खबर ही नहीं, सारे गाँव में रात ही खबर फैल गयी। ई ससुरा दुआरे बैठाने-लायक नहीं है। कहते थे कि कोई राँड़-रेवा मढ़ दो इसके गले। कल रात बाबू साहब के यहाँ पंचाइत हुई। तय हुआ कि अब सभा-सोसाइटी की चौकी, गाँव में नहीं धरी जाएगी। औरत-सौरत का भासन यहाँ नहीं होने पाएगा। बहू-बेटियों पर खराब असर पड़ता है। बात यह है भइया कि राजा साहब ओट लड़ रहे हैं, कांगरेस के खिलाफ। बाबू साहब उनको ओट दिलाना चाहते हैं। आपके डर से कुछ कह तो सकते न थे। अब मौका मिला है।"

"कैसा मौका ?" बाबा झुँझला कर बोले।

अगनू आ कर उनके छाते के नीचे खड़े हो गये। बोले, "उलट दिया हंसवा ने कल रात!"

"क्या मतलब?"

"सच मानो, खाना-पीना नहीं हुआ। जब बहुत देर होने लगी, तो बंगा ने लालटेन ले कर देखा, और बाहर निकल कर, सारे गाँव में ढिंढोरा पीट दिया। अभी तो सर-सामान ले कर, घाट तक पहुँचाने गया है।"

बाबा चुपचाप आगे बढ़ गये। इस तरह की बात सुन कर बरदाश्त करना उनके लिए कठिन है, पर न जाने क्यों उन्हें हँसी आ रही थी। तभी दूर से हंसा की भारी आवाज़ सुनाई दी?

'जग बेल्हमौलू जुलुम कइलू ननदी...जग...

बरम्हा के मोहलू, बिसुनू, के मोहलू

सिव जी के नचिया नचौलू मोरी ननदी...जग...'

बाबा खड़े थे। हंसा धीरे-धीरे पास आ गया। अँधेरा छँट गया था। हंसा डर गया।—कैसे खड़ा हूँ भइया के सामने, कैसे?

कुछ देर दोनों चुप रहे। बाबा ने देखा, हंसा के हाथों में खद्दर के कुछ कपड़े थे, पर उसकी निगाह नीचे ज़मीन में धँसी थी।

"हंसा!" बाबा बड़ी कड़ी आवाज़ में बोले, "जहाँ पहुँच गये हो, वहाँ से वापस नहीं आना होगा!"

"भइया, बोटी-बोटी कट जाऊँगा, पर यह कैसे हो सकता है!"

हंसा जाने लगा, तो बाबा ने कहा, "घर जा कर सीधा-समान बाँधे आना। आज मछरी पकड़वाऊँगा, वहीं खावाँ पर बनेगी।"

"अच्छा, भइया!" कह कर हंसा अपनी बटन-सी आँखों को पोंछता हुआ चला गया।"

गाँव में चुनाव की धूम मची थी। बाबू साहब बभनौटी के साथ काँग्रेस का विरोध कर रहे थे। उनके पेड़ों पर इश्तिहार टाँग दिये जाते, तो उनके आदमी उखाड़ देते। किसान बुलवाये जाते, उन्हें धमकाया जाता। खेत निकाल लेने की, जानवरों को हँकवा देने की बात कही जाती और हंसा-सुशीला की कहानी का प्रचार किया जाता,—भ्रष्ट हैं सब! इनका कोई दीन-धरम नहीं है! गन्ही तो तेली है।...

और हंसा अब पूरा स्वयंसेवक बन गया है। खद्दर का कुर्ता-धोती और हाथ की लम्बी लाठी में तिरंगा। बगल में बिगुल लटका रहता है और वह बापू के संदेश की परची बाँटता फिरता है।

"बाबू साहब जो कहें मान लो! पूड़ी-मिठाई राजा के तम्मू में खाओ! खरचा-खोराक बाबू साहब से लो, और मोटर में बैठो! लेकिन कँगरेस का बक्सा याद रखो! वहाँ जाकर, खाना-पीना भूल जाओ! कंगरेस तुम्हारे राज के लिए लड़ती है। बेदखली बंद होगी! छूआ-छूत बंद होगा। जनता का राज होगा। एक बार बोलो, बोलो गन्हीं महात्मा की जय!...जय...

घर-घर में, कंठ-कंठ में सुशीला के मनोहर गानों की धुनें गूँजने लगीं। गाँव के बच्चे हंसा दादा के पीछे, हाथों में अखबार की रंग कर बनायी झंडियाँ लिये इधर-से-उधर चक्कर लगाया करते थे।

उन्हीं दिनों गाँव में रामलीला होने को थी। बाबू साहब की पार्टी के राम-लक्ष्मण बने थे। पर रावण बननेवाला कोई नहीं मिलता था। लोग कहते, रावण बननेवाला मर जाता है। कोई तैयार न होता था।

बाबा दशमी के मालिक थे। हंसा कैसे बरदाश्त करता कि लीला खराब हो। ऊपर से सुशीला जी लीला खत्म होने पर भाषण करनेवाली थीं। हंसा सोचने लगा, क्या हो? सहसा लड़को ने तालियाँ बजायीं और हंसा दादा को घेर लिया। जल्दी-जल्दी काला चोगा रावण के गले में डाल दिया गया। सिर पर पगड़ी बाँध कर दस मुँहवाला चेहरा हंसा दादा ने पहन लिया। हाथ में तलवार ली और गरज कर बोले, "मैं रावण हूँ, कहाँ है दुष्ट राम?"

एक बच्चे ने अपनी छड़ी में लगा हुआ तिरंगा झट दशानन के सिर पर खोंस दिया और सब लोग ज़ोर से हँसने लगे। उसी भीड़ में से किसी ने चिल्ला कर कहा, "गन्हीं महत्मा की जय...!" "जय...हो !..."

रावण भाषण देने लगा, "भाइयो ! राम राजा था। देखो, छोटी जात का कोई कभी राम नहीं बनने पाता है। राक्षस सब बनते हैं। बिराहिम, कालू, भुलई, फेंदर, सभी की पालटी है, हमारी। यह जनता की लड़ाई है। बोल दो धावा?" और हंसा हाथ-पाँव हिलाता आगे को चल पड़ा। पीछे-पीछे सारी राक्षसी सेना। किसानों के बंदर बने लड़के भी अपना चेहरा लगाये, गदा लिये, जनता की पार्टी में शामिल हो गये। राम बेचारे अकेले बैठे रह गये। रामायण बंद हो गयी। तिवारी चिल्लाने लगा, पर कौन सुनता है!

"गन्हीं महतमा की जय !...हंसा दादा की जय... !"

बाबा हँसी के मारे लोट-पोट हो रहे थे। उनसे कुछ कहते ही नहीं बनता था। राक्षसी सेना के काले रंग में रँगे मुँह और हाथों में तिरंगे झंडे देख कर, लोग राम के लिए खरीदी मालाएँ, हंसा के ही ऊपर फेंकने लगे।

इसी बीच सुशीला जी तीर की तरह भीड़ में घुसीं, "कौन बना है रावण? क्या तिरंगा इसीलिए है?" उन्होंने हाथ से चेहरे को ठेल दिया। सहसा हंसा को देख कर, वह पसीने-पसीने हो गयीं।

"यही स्वयंसेवक हो! बदनाम करते हो झंडे को! बंद करो यह सारा तमाशा, होने दो रामलीला ठीक से!"

सब लोग अपनी जगहों पर लौट गये। बाबा चुपचाप खड़े थे। सुशीला जी अपना झोला सँभाले उनकी बगल आ खड़ी हुईं।

लड़ाई चलती रही। नगाड़े और ढोल बजते रहे। संठे के रँगे हुए तीर छूटते रहे। पर रावण मरे, तो क्यों मरे? चौपाई बार-बार टूटती। व्यास बार-बार कहता, "सो जाओ!" पर कौन सुनता है! हंसा की सेना क्यों हारे?

इसी समय लक्ष्मण को ज़मीन से ठोकर लगी। वह लुढ़क पड़े। उनका मुकुट गिर गया। आगे-पीछे दौड़ते-दौड़ते राम को चक्कर आ गया, और उनको उल्टी होने लगी। सारे मेले में शोर मच गया, "जीत गयी जनता की फौज। हंसा दादा की पाल्टी ऐसे ही वोट जीत लेगी!"

इधर दिन-रात सुशीला जी खजड़ी बजाती, घूमती रहतीं और रात हंसा के घर लौट आतीं।

दूसरे दल के लोगों ने चिट्ठियाँ भिजवायीं।—सुशीला जी को यहाँ से बुला लिया जाए। जनता पर बुरा प्रभाव पड़ रहा है।...चुनाव के दो दिन पहले उन्हें नोटिस मिली कि वह बापू के आदर्शों को तोड़ रही हैं, इसलिए उन्हें काम से अलग किया जाता है।

वह हँस पड़ी थीं, ईश्वर ने पति से अलग किया और अब बापू के नकली चेले उन्हें जनता से अलग करना चाहते हैं!

उनकी खजड़ी और ज़ोर से बजने लगी। उनका स्वर और तेज़ हो गया।

चुनाव के दो दिन रह गये। सुशीला जी बीमार पड़ गयीं। हंसा के घर में उनका डेरा पड़ा था। वह बुखार की जलन सह रही थीं, पर किसी को अपने पास बैठने नहीं देती थीं। रात जब हंसा लौटता, तो वह उससे कहतीं, "तुम सुनाओ अपना भजन, और हंसा बिना कुछ सोचे-विचारे गाने लगता।

'हंसा जाई अकेला, ई देहिया ना रही...'

फिर प्रचार का समाचार ले कर, वह उसके रोयें-भरे सीने में मुँह छिपा लेतीं।

चुनाव का दिन आ गया, लेकिन सुशीला जी बिस्तर से नहीं उठीं। किसानों की जय-जयकार करती हुई टोलियाँ गुजरतीं, तो वह अपने बिस्तर में तड़प कर रह जातीं। हंसा उन्हें बहुत रोकता, पर वह उठ कर उनसे मिलतीं। बाबा बहुत समझाते, पर न मानतीं।

चुनाव के दिन डोली में उठा कर वह पोलिंग पर ले जायी गयीं। वहीं पेड़ के नीचे बैठे-बैठे उन्हें कई बार चक्कर आया और बेहोश हुईं।

ओट पड़ता रहा। किसान राजा साहब के कैम्प में खाना खाते, उनकी मोटर में आते, पर ओट डालते काँग्रेस के बक्स में। उन्हें सुराज मिलेगा, उन्हें आजादी मिलेगी; यही सब सोचते थे।

तीसरे पहर ज़ोर की बारिश आयी। सुशीला जी छाया में जाते जाते भींग गयीं। बाबा ने उन्हें डोली में बैठा कर, घर भेज दिया। चुनाव चलता रहा।

हंसा भूत की तरह काम में जुटा था। बहुत देर पर कभी उसे सुशीला की याद आती, तो मन को दबा कर फिर परची बाँटने लगता। बहुत कम ओट राजा के बक्से में गिरे। शाम हो गयी। राजा का तम्बू हारे हुए कर्मचारियों से भर गया। हंसा उन्हें देख कर जाने क्यों क्रोध से जल रहा था। उसे बार-बार सुशीला की याद आ रही थी।

"भइया, कुछ और होना चाहिए।"

"मुझे चले जाने दो, हंसा।"

और पच्चीस-तीस लोग हँसिया लेकर राजा साहब के तम्बू की डोरियों के पास खड़े हो गये। कौन जाने क्यों खड़े हैं! हंसा ने विजय का बिगुल फूँका और सारा तम्बू एक मिनट में ज़मीन पर था। ज़ोर का शोर मचा। किसानों ने जय-जयकार की, और लोग अपने घरों को वापस चले गये।

सुशीला जी को निमोनिया हो गया। उनकी साँस फँस गयी। बाबा रात-दिन उसके पास बैठे रहे। हँसा ने ज़मीन-आसमान एक कर दिया, पर फ़ायदा न हुआ। वह बार-बार महात्मा जी का नाम लेतीं, हंसा से उनका भजन सुनतीं और आँखें बंद कर लेतीं।

चुनाव का नतीजा सुनाया गया, तो नेता लोग मोटर में चढ़ कर सुशीला जी से माफी माँगने आये। पर सुशीला जी ने मुँह फेर लिया, जैसे वह कहती हों, "मैं तुम्हारे करतब जानती हूँ।"

और हंसा उठ कर बाहर चला गया।

अंत में एक दिन सुशीला जी की साँस बंद हो गयी। हाय मच गयी! बच्चे फूट-फूट कर रोने लगे। हंसा ने बकरी के लिए पत्ता तोड़नेवाली लग्गी में तिरंगा टाँग कर, हाथों से ऊपर उठा लिया और अपना बिगुल फूँकने लगा। उसकी हँसी लोगों के मन में भय पैदा करने लगी पर वह हँसता रहा।

आज तक, गन्ही महात्मा, जवाहिरलाल और जनता की फउज, यही तीन शब्द वह जानता है। लड़के अब भी उसे उसी तरह घेरे रहते हैं। पर पहाड़ से तखत को वह उठा नहीं सकता। हाँ, उठा कर ले जानेवालों को देख कर वह ज़ोर-ज़ोर से हँसता है और घंटों हँसता रहता है।

उसके खेत में घास उगी है। मकान ढह गया है। पर लग्गी में फटहा तिरंगा और सुशीला का दिया हुआ बिगुल अब भी टँगा रहता है। कभी-कभी वह गंदे काग़ज़ दीवारों पर सटाता फिरता है और कभी सारे गाँव की गलियाँ साफ कर आता है।

आज़ादी मिली, तो उसे रुपये मिले। राजनीतिक पीड़ित था, वह। पर वह रुपयों की गड्डी ले कर हँसता रहा, और फिर उन्हें गाँव की दीवारों में एक-एक कर टाँग आया।

दो बार लोग उसे आगरे ले गये। पर कुछ ही दिनों बाद फिर, 'हंसा जाई अकेला।' का स्वर गाँव की फिजाँ में गूँजने लगता।

अब भी कभी-कभी वह आज़ादी लेने की कसमें खाता है। उसके तमतमाये हुए चेहरे की नसें तन जाती हैं और वह अपना बिगुल फूँकता हुआ, कभी धान के खेतों, कभी ईख और मकाई के खेतों की मेड़ों पर घूमता हुआ, गाया करता है,

'हँसा जाई अकेला...'

# चाँद का टुकड़ा

आज जो नये-नये मज़दूर गाँव में आये थे, उन पर सहुआइन की कड़ी निगाह थी। कौन कैसा है, कहाँ से आया है, कुछ गाँठ में दाम भी है या इसी सड़क की खुदाई से इलाका खरीदने का मंसूबा बाँध कर आया है, आदि। इस पूरी छान-बीन में उस की निगाह कहीं अटकी तो सनोहर ही पर आ कर।

"कौन है रे तू, जो चौखटे पर चढ़ा बइठा है? देखत है नहीं कि बेर बिसवत है। दिया-बत्ती तो हो लेने दे!"

उदास सनोहर को जैसे किसी ने गहरी नींद में झटका दे कर जगाया हो। वह सहुआइन के चौड़े, झरोखेदार फाटक के एक ओर खड़े, मोटे खम्भे से उठँगा, तो उसे लगा, जैसे वह घर की झिलँगा चारपाई में आराम से पड़ गया था।

"कहाँ से आये हो? लच्छन ठीक नहीं जान पड़ता। ओहू तो सब अदमी ही हैं न! कब से आते-जाते हैं, मुदा....."

सहुआइन बात पूरी भी न कर पाई थी कि सनोहर उठ खड़ा हुआ। उस की नसें चटखीं, जैसे शरीर का भार उन पर एकाएक लद गया हो। उस ने कमर सीधी की। एक बार अपने हाथों को झटकारा और गमछे को कंधे पर फेंक कर धीरे-धीरे कुएँ की जगत पर जा बैठा।

—कुछ विचित्र है भगवान की माया, ठीक इसी तरह की दूकान तो मेरे गाँव में भी है, पूरब की ओर उस की भी दुआर है, दरवाजे

पर इसी तरह सेन्हुर-घी से टीके गनेस महाराज बने हुए हैं। इसी तरह का जगतदार कुआँ, इसी तरह गाँव के ठीक बीचोबीच घर और सहुआइनियाँ...! उसे जाने क्या सोच कर हँसी आ गयी और पिघलते हुए चाँद का एक उदास टुकड़ा, किसी धुएँ की तसवीर की तरह मिटता हुआ, सहुआइनियाँ की बखरी की खपरैल से उड़ता, चला गया। सनोहर की आँखें दूर तक उसी का पीछा करती रहीं।

उसी समय एक लड़की खोइछा में अनाज भरे आयी और तराजू के पलड़े में भर से गिरा कर, आँचल को झटकारने लगी। धूल से सारा घर भर गया, पर कोई बोला नहीं। सहुआइन ने एक मैले टिन से, जो मक्खियों से पूरा ढँका हुआ था, कुछ अनरसे निकाल कर लापरवाही से थमाये और वह वहीं से उन्हें खाती हुई, चली गयी। बगल में चार-पाँच मज़दूर गोलाई में बैठे अपनी गाँजे की चिलम खुरचते रहे, तभी उनमें से एक ने कहा, "तनिक खमीरा माँग, तो दम लगे!" और उसने अपने सिर पर बँधी पगड़ी को खोल कर खूँट से एक नन्हीं-सी पुड़िया निकाली।

दूसरे ने जवाब दिया—"भइया, हम नहीं जाते। जाने क्या बकने लगे ससुरी! उसे तो जवान ही भाते हैं।"

सनोहर सब देखता रहा, जैसे किसी नवागंतुक बच्चे की तरह एक-एक चीज़ को पहचान रहा हो।

—यही सब तो उसके अपने गाँव में भी होता था, पर वह कभी गड़ा क्यों नहीं उसकी आँखों में? बीच-बीच में उसका मन इसी प्रश्न पर लौट आता था और वह स्मृतियों की दुनिया में चक्कर काटने लगता था।

किसी कापालिक के सिर-सी धुएँ भरी उसकी झोपड़ी और उसमें भार जलाये बैठी उसकी माँ का कलूटा, बूढ़ा चेहरा उसके आगे नाचने लगा। फिर एक-एक कर के उसे वे बखरियाँ याद आयीं :

—ठाकुरबाड़ी की मालकिन कितनी दयालु हैं। संकोचवश जब वह पानी भर कर जल्दी से भाग आता, तो पीछे-पीछे बुलावा आ जाता। "बड़ा लजाधुर है सनोहर! कहा न एक बार कि जाते-जाते पूछ लिया कर..." और एक लोटा गाढ़ा मट्ठा और एक भेली गुड़ हाथ पर रख देतीं।

—और वह बियाजखोर की मेहरारू...बाप रे बाप...! "क्यों रे दहिजार के, सेत में पानी भरता है क्या, जो गगरा-बाल्टी भी नहीं माँजता!" और राम-राम कहते हुए, वह कपड़े का एक फटा टुकड़ा लपेटे, सीने पर चढ़ने को तैयार हो जाती। उसकी ओर देखना भी मुसकिल हो जाता। नंगी ही तो रहती थी, वह!

—लेकिन वह चनरमा! सनोहर जैसे इस एक खयाल से अपने को दूर नहीं कर पा रहा था। कुछ भी वह सोचता, कुछ भी करता, पर चनरमा उसकी आँखों से ओझल नहीं होती।—सहुआइनियाँ कितना चिढ़ती, कितना मना करती, पर आँगन में बाल्टी खुटकते ही, चनरमा अपनी धोती चुनने लगती। बाल्टी-लोटा उठाती और कुएँ की जगत पर आ बैठती। वहीं नहाती, कपड़े छाँटती और वह बीच-बीच में गगरे से उसकी बाल्टी भरता जाता।

सनोहर सोचता जा रहा था, तभी सामने से एक मज़दूर चिलम लिये उठा और उसके आगे आ कर खड़ा हो गया।

"कंकड़ है?"

"मैं नहीं पीता।"

"बीड़ी-तमाखू कुछ नहीं?"

"कुछ नहीं।"

"तो चलाय चुके फरसा, बच्चू!" और वह लौट गया। मण्डली में कुछ मज़ाक हुआ और कई आँखें एकाएक उसकी ओर लौट पड़ीं। फिर हँसी और खाँसी के फौआरे साथ छूटे। मण्डली उठ गयी। सहुआइनियाँ ने पिसान-दाल तौल कर, एक-एक को दिया और सब अपने-अपने गमछे में बाँध कर उठ खड़े हुए। एक ने पीली दुअन्नी दी तो काफ़ी तेर बक-झक हुई और उसे अपने गमछे का आटा तराजू में गिरा देना पड़ा। एक ने पैसा नहीं दिया, तो उसे तब तक के लिए, जब तक वह पैसा न दे; अपनी धोती वहीं धरनी पड़ी। सनोहर ने सुना, सहुआइनियाँ चिल्ला कर कह रही थी, "का ठिकाना तुम्हार लोग का, आज इहाँ, कल उहाँ।"

लोगों ने बहुत समझाया, "आज ही काम पर आया है, हफ्तेवारी मिलती है न!" पर वह एक न मानी और कुड़बुड़ाती रही। धीरे-धीरे सब चले गये। जिसने सनोहर को साथ चल कर आटा दिलाने की बात कही थी, शायद वह भी। सनोहर बैठा रहा।

कातिक का शुक्ल पक्ष था। कुएँ पर बाल्टियों की खड़खड़ाहट और गगरियों की भक्-भक् बढ़ती जा रही थी। दोनों हाथों में, पानी से भरे हुए मिट्टी के घड़ों के साथ, पीठ पर लदी हुई रस्सियाँ देख कर, सनोहर को फिर अपने गाँव का कुआँ याद आ गया था। पर उसके पेट में जैसे कुछ जल रहा था। उसका कलेजा सिकुड़ता जा रहा था। उसकी नसें तनती जा रही थीं। लगता था, उबकाई हो जाएगी।— पर यहाँ; इस जगह? यह तो ठीक नहीं है। क्यों न वह उठ चले।

गमछे को बिछा कर कहीं सो रहे, तो शायद उसे आराम मिल जाए। वह उठ खड़ा हुआ। जगत पर से, नीचे के पहले जीने पर पाँव रखा ही था कि पीछे से किसी ने रस्सी से उसकी पीठ में धक्का दिया,

"चला नहीं जात है, का !"

सनोहर ने पीछे देखा और सहसा उस के मुँह से निकल पड़ा, "चनरमा...!" लड़की भुनभुनाती, अपनी पायल झुनकाती, चली गयी, "चनरमा...चनरमा ! बड़ा चनरमा वाला आया ! अपना मुँह नहीं देखता।"

—पर तेल में डूबे, खुले हुए, वैसे ही लम्बे बाल, वैसा ही चाँद के टुकड़े-सा मुखड़ा, वैसी ही कटहल के कोये की तरह, बड़ी-बड़ी आँखें, वैसी ही मुँदरी की तरह की कमर और हाथी की-सी मस्तानी चाल। सनोहर को जैसे काठ मार गया हो। वह क्षण भर, जैसे अवाक-सा ताकता रह गया। फिर सहसा उसे बड़ा डर लगा।—यह सब क्या है ! वह अपने ही गाँव में तो नहीं है ? या उस के साथ कोई प्रेत-लीला तो नहीं हो रही है ? यहाँ तो मैं जो देखता हूँ, वही मेरा है—अपना, मैं सब को पहचानता हूँ, और मुझे...? वह कुछ देर तक सोचता रहा, फिर चला गया।

सनोहर की चुप्पी से मेठ नाराज़ था। दूसरे, सभी मज़दूर एक ही जगह तो काम नहीं कर सकते ? उसने कंकड़ियों वाली जो ज़मीन अब तक छोड़ रखी थी, उसी पर सनोहर को लगा दिया। तीन-चार छोकरे मिट्टी उठाने को कर दिये। फावड़े बजने लगे। मिट्टी सड़क पर गँजने लगी। कंकड़ियों की छत सनोहर के फरसे से उखड़ने लगी। फावड़ा कभी चनक कर, बिछल जाता और अधकटा कंकड़

उछल कर इधर-उधर फैल जाता, पर दूसरे वार में सनोहर की नसों का तनाव कुछ और बढ़ जाता और फावड़ा कंकड़ों की छाती फाड़ता हुआ मिट्टी में धँसता चला जाता। दोपहर तक तीन घरी और छे ढूहें खड़ी हो गयीं। कंकरीट के झौवे को ढोते-ढोते चारों लड़के थक गये, पर खोदी हुई मिट्टी का ढेर लगा रहा। सनोहर बीच-बीच में फावड़े के बेंट पर अपने शरीर का पूरा भार लाद कर, आराम कर लेता और अपने पसीने की बूँदें उँगलियों से काछ कर, इधर-उधर झिटक देता, फिर काम में जुट जाता।

देहात के इस इलाक़े में यह सड़क स्वतंत्रता की पहली निशानी है। जौनपुर-बनारस की सरहद पर गोमती के दक्षिण, यह एक ऐसी जगह है, जहाँ मोटरें नहीं जा पातीं, इसलिए यह नेताओं की उपेक्षिता भूमि है। राजनीति के सम्पर्क में न आने का सबसे बड़ा कारण मोटरों का न आ सकना ही है। इसलिए इस बड़े इलाक़े के निवासी केवल वोट देते हैं और वह भी कांग्रेस को। शासन में प्रतिनिधित्व नहीं करते।

सनोहर इसी इलाक़े के एक छोर पर बसी, एक नन्हीं-सी बस्ती से दस मील चल कर, मज़दूरी करने आया है। ज़रूरत उसे नहीं थी, इसकी। घर में खाना-पीना चल जाता था। माँ भाड़ जलाती थी। बहन बरतन माँजती थी। वह खुद चार बखरियाँ पकड़े हुए था, पर एकाएक बहन की शादी की बात सिर पर देख कर, वह बिचल गया था। बूढ़ी माँ अभी दो बरस पहले, कुम्भ के मेले में पिस कर मरे, अपने पति को भूल भी न पायी थी। रात-दिन उस की माँड़े से भरी आँखें बिसूरती रहती थीं, कि एक नयी फिक्र सवार हो गयी।

सुबह उठ कर सरकार को अँगुलियाँ तोड़ कर गाली देती। नेताओं को नाम ले-ले कर सरापती। उसे लगता, जैसे इन्हीं लोगों ने बुला कर, उसके आदमी का गला घोंट दिया है। लोग बहुत समझाते, कहते कि किसी ने उसे बुलाया थोड़े ही था, पर वह एक न मानती।

कुछ दिन से वह लड़की को ले कर रात-दिन रोती। सनोहर को कोसती। बाप के रहने से यह काम कब का हो गया होता, यह सब कहती और सनोहर भी अपनी दुलारी को देख कर दुखी हो जाता। उसका शरीर, रूप-रंग सब, उसे उसकी हीनता का बोध कराता, पर गाँव छोड़ना उसे बहुत खलता। गाँव की अमराइयों, बसवटों और अनवरत प्रवाहित गोमती की तरल धार में उसका प्राण बस गया था।

बात रुकी थी, तो दो पियरी, बाजू-बरेखी और बीस-पचीस रुपयों पर। उसने जब सुना कि सरकारी काम अपने इलाके में भी हो रहा है, तो वह एक दिन कंधे पर गमछा टाँग कर चल पड़ा था और आज, जब कंकरीट पर फावड़ा चलाने से उसकी नसें पिघलती जा रही थीं और भूख से पेट की अँतड़ियाँ सूख कर, बार-बार उसे बेहोशी के नज़दीक पहुँचा रही थीं, तो उसे चनरमा का चाँद-सा मुखड़ा नहीं याद आता था। याद आती थी दुलारी, सुहाग के सपनों में डूबी हुई—पीले हाथ-पाँव वाली भोली दुलहिन, जिसके माथे पर चाँदी के झब्बे झूल रहे थे—जिसके हाथों में बाजू की घुंडी लटक रही थी। उसे लगता, जैसे आँसुओं से भींगी दुलारी को वह डोले में बैठा रहा है।

सनोहर के फावड़े ज़मीन में धँसते गये। दोपहर की तेज़ धूप में वह काम करता रहा। शाम तक चार रुपये का काम ! मजदूरों की आँखें टँग गयीं।

"ससुरा मर जाएगा, कहीं पेट काट कर रुपया कमाया जाता है।"

"कहाँ से ले आये पिसान-दाल, गाँठ में कौड़ी भी है।"

"चल-चल हम दिला देते हैं, कैसे न देगी ससुरी...!"

सनोहर नहीं उठा। वहीं एक नीम की जड़ से उठँग कर बैठ गया। धीरे-धीरे मज़दूर चले गये। कातिक की चाँदनी, जुते खेतों के ढेलों पर आ कर बैठ गयी। सड़क पर फैंकी हुई ऊबड़-खाबड़, मज़दूरों के पसीने से लथपथ मिट्टी का ढेर, अपने दूधिया दाँत निकाल कर हँसने लगा और वहीं बगल में मिट्टी को छाँट कर नाप के लिए छोड़ी, सनोहर की छे ढूहें, दुलारी की छे आकृतियों की तरह उसे रिझाने लगीं।

—भइया सिर दुखात है का हो...तेल ठोंक दें ?

—कचपचिया मूँड़ पर आ गयी है। माई जान ले, तो रहने न दे। चुप्पे चलो, खाय लो। हमार तो अँखिया ही नहीं लगी। भूख के मारे परान चला गया, मुदा कवर न उठा।

—अब तो तुम्हारा ही सहारा है, भइया। बापू तो हम को अधजल में छोड़ गये।

—ठकुरइनियाँ तुम का गाली देत रही का, भइया ? छोड़ दो बखरी। दो रोटी कम ही खाएँगे। बड़ी चली सान बघारने!

—न जाओ भइया...! बिदेस में तकलीफ होगी। जाने कइसा पड़े, का होय !

—बीरनऽ...मोरे बीरन...

सनोहर अकचका कर उठ बैठा। यह सब क्या सुन रहा हूँ, मैं? हुड़ुक और मजीरे की आवाज़ अब भी उस के कानों में गूँज रही थी। दुलारी के रोने की करुण ध्वनि उसे परेशान कर रही थी। वह बार-बार उस आवाज़ को नकारने की कोशिश करता, पर जैसे वह उसके कानों में भर गयी थी।

आज चौथे दिन सनोहर फिर गाँव आया। उसके पाँव आज लोहे की तरह अकड़ कर कड़े हो गये थे। सीने में एक सनसनी-सी लगातार चल रही थी। सिर चक्कर खा रहा था। आँखों के आगे रह-रह कर कई रंग छा जाते थे। उसे कुछ भी याद नहीं कि वह कहाँ है! थोड़ी देर वह बैठा रहा फिर दीवार से सट कर लटक गया। कुछ देर आराम करने के बाद उसकी आँखें खुलीं तो एक लड़की रोटी का चोंगा बना कर खाती हुई, वहीं चक्कर काट रही थी। उसके जी में आया कि दौड़ कर इस लड़की का गला दबा दे और इसकी रोटियाँ छीन कर खा जाए।

मज़दूर गाँजा पीते रहे। सहुअइनियाँ के तराजू पर बाट खटकते रहे, पर वह अनसुनी करता रहा। उसने एक बार सोचा, उठ कर उससे आटा ले ले और उसे फाँक जाए, फिर पानी पी लेगा, पर उससे उठा नहीं गया।

बैलों की घंटियाँ टुनटुनाती रहीं। बकरियाँ मेंऽमेंऽकरती रहीं। चाँद का टुकड़ा कई बार बादलों में थिरक कर उसके सामने से गुजर गया, पर वह जैसे कुछ नहीं देख पाया। मज़दूर उठे, अपना

दाल-पिसान ले कर चले गये, पर जैसे वह किसी को याद ही नहीं आया।

पाँचवें दिन ज़ोर का पानी बरस गया। ज़मीन पानी में डूब गयी। कई दिनों के लिए काम बंद हो गया। मज़दूरों ने अपना झउआ-फरसा सम्हाला और चले गये। जो बचे थे, उन्होंने ठेकेदार से कहा, "साहेब, सनोहर भूखों मर रहा है, उसकी पाँच दिन की मजूरी...।"

"हफ़्ता पूरा भी नहीं हुआ।" ठेकेदार बिगड़ कर बोला।

"साहेब, हम कमकर हैं, बिना खाये दिन भर फरसा चलाएँगे तो कैसे जान बचेगी!"

"बेकार की बात है। वह बीमार होगा। भूख से कोई कैसे मर सकता है?"

लेकिन बरखा के बाद भी, सनोहर की पाँच दिनों में खोदी हुई गड़ाहियों की बीस ढूहें, जैसी-की-तैसी बनी हुई थीं। बरसात उन्हें मिटा नहीं सकी थी, क्योंकि वे केवल मिट्टी की ही नहीं थीं। सनोहर ने कंकरीट खोदा था। वे उसकी दुलारी थीं—एक नहीं, बीस। सनोहर उन्हें अब भी देख रहा था और सहुआइनियाँ उसे डाँट रही थी "दहिजार घर से चलेंगे, तो ई नहीं कि दो मुट्ठी पिसान-दाल बाँध लें। जाने कवन बहिन-मतारी बइठी हैं परदेस में! अब डोलना नहीं दुआर छोड़ के! खा-पी के सुत रह! और तू छबिया, एहिका खिआइ के एक खटिया दे देना। दो दिन से भुइयाँ पड़ा है।"

सहुआइनियाँ हाथ झटकारती चली गयी पर छबिया अब भी सनोहर के आगे बैठी, उसे खाना परोसती हुई मुसकरा रही थी, "बड़े आये चनरमा वाले, अपनी सूरत नहीं देखते!"

# प्रलय और मनुष्य

थकी हुई लहरें, रह-रह कर यहाँ अपना दम तोड़ती हैं और उनके मुँह से निकला हुआ सफ़ेद झाग, धार से कटे इस कोंझे में इस तरह भर गया है, कि यह किनारेवाली बाँसों की कोठी, ज़मीन से नहीं, इसी झाग से उगी लगती है।

हाऽऽ-आऽऽ-आँम्...हाऽऽ-आऽऽ-आम्...पानी गँदले आसमान तक ऊँचे रोलर पर चढ़ा, कभी नीचे, कभी ऊपर, कभी चक्करदार भँवर बना कर, कभी जवान पागल की तरह हाऽ-आऽऽ-हाऽऽ... चिल्लाता, छाती पीटता, ऊपर चढ़ा आ रहा है।

आम की वह पुलुंगी अब डूबी, अब डूबी! दूर से अर्र्र्र्...हर्र्र्...धारा को चीरता हुआ समूचा पेड़ नये मकान की दीवार से आ रुका। धार क्रुद्ध है, पछाड़ खाती है। सफेद भेंड़े की तरह, पीछे हट-हट कर, टक्कर लेती है। पानी बाँसों ऊपर जा कर, बारूद के गोले की तरह फूटता है, फौवारा बन जाता है।...वह गया, गया, हर्र्...हम्! ढह गया मकान, जैसे वहाँ था ही नहीं, कुछ। और अब दूर, बहुत दूर, बहुत सारे लकड़ी के टुकड़े, टोटे, धरनें, कड़ियाँ नागों की तरह उग आये और धार के साथ भागे जा रहे हैं।

धार ने ऐंठ कर घमंड से देखा, ऐंऽ-हाँम्...ऐंऽ-हाँम् और एक बहुत बड़ा कगार टूट कर गिरा और वह खिलखिला कर हँस पड़ी।

"बड़ा अकड़ कर खड़ा था, महरानी!" फुदक कर मेझुकी बोली

और छटकती हुई दूर चली गयी। मगर गोते लगा कर पानी की सतह पर आया ही था कि मेझुकी उचक कर, उसकी पीठ पर बैठ गयी। पहिना पानी को चीरता हुआ, धार की ओर चढ़ रहा था। मेझुकी कूद कर उसके आगे पहुँची, "वाह रे ढीठ! मौत आ गयी क्या तेरी, देखता नहीं, महरानी की सवारी आ रही है!"

हवा ज़ोर की बहने लगी, हर्र्-हर्...हर्र्-हर्। लहर उठी और पहिना के नथुने फूल गये। चेल्हवा छटकता हुआ आया और महारानी के आगे चमक कर कहने लगा, "दूर से धूम आया, महरानी! कोई राह रोकनेवाला नहीं, कोई अवरोध नहीं।"

सोइस जुम् से ऊपर आयी, "आदमी नहीं दीखा कहीं?"

"आदमी?" हो ऽऽहाऽऽहाऽऽ...होऽऽहाऽऽऽ...धार व्यंग्य से अट्टहास करने लगी। "वातास!" उसने कड़क कर आवाज़ दी। सारी सृष्टि में भय छा गया।

"लहरों को ऊँचा करो! मैं मनुष्य को देखूँगी—बेचारे मनुष्य को!"

लहरों का उत्ताल नर्त्तन! चार-चार गज़ ऊँची लहरों की खाईं, लहरों की खंदक।

"वह भागा जा रहा है, महरानी, सिर पर खाट और बरतन-भाँड़े, गोद में बच्चा और पीछे..."

कछुई मुँह उचका कर देख रही थी। मेझुकी बोल उठी, "ब्याहता है, महरानी जी। दूसरा दिन होता, तो गोद में उठा कर उसके पैरों की महावर को भींगने से बचा लेता।"

इसी समय भाषा-शास्त्री मेढक का आविर्भाव हुआ। मेझुकी मारे

लाज के वहीं पानी में गड़ गयी। धार मुसकुरा कर रह गयी। मेढक बोल उठा, "सहसा वसुधा पर आपका प्रताप छा गया है, महरानी जी! आदमी अपनी भाषा खो चुका है। उसकी बोली स्वयं वही नहीं समझता। उसकी बीवी, उसके बच्चे, सब जैसे अर्थहीन भाषा बोल रहे हैं। उसे कोई नहीं सुनता। वह देखिए, आपके इशारे पर लहरें ऊपर चढ़ गयीं। आदमी लहरों पर चारपाई बिछा, उस पर अपने बच्चे को बिठा कर, उस बबूल पर चढ़ गया। बच्चा बह रहा है। माँ पछाड़ खा कर लहरों पर बेसुध बहती जा रही है और आदमी टँगा है बबूल के काँटों पर, जिसे दूसरे दिन बचा कर चला जाता था। बबूल की छाँह की हँसी उड़ा कर, साहित्य में उपमा के लिए इस्तेमाल करता था।"

धार फिर हँसी, "कहाँ गयी ममता इसकी—साहस, पौरुष और बुद्धि ?" वह फिर हँसने लगी—हुड्...हुड्...करके लहरों का समताल पर नर्तन होने लगा। मेढक ने किसी तरह साँस ली।

"उस पर दो विषधर लटके हैं, चार चूहे और दो नेवले, जाने कितने बिच्छू, गोजर और बिच्छखोपड़े !"

सोइस ने दुखी हो कर अपनी नाक पानी के ऊपर करते हुए कहा। पर लहरों ने गुस्सा हो कर, ज़ोर का धक्का दिया और उसने पानी में अपने को छिपा लिया।

मेढक गम्भीर हो कर बोल उठा, "सारे जंतु अपना अवगुण छोड़ चुके हैं, रानी जी ! कोई किसी को कष्ट नहीं दे सकता। सब पर आप का एक-सा अंकुश है। सचमुच शेर और बकरी को एक घाट पानी पिलानेवाला राज है, आपका !"

धार गम्भीर हो गयी—योग्य शासक की तरह विचार-मग्न !

"पर मनुष्य का भरोसा नहीं ! हुर्-हुरुर्...हुर्-हुरुर्...जैसे

चक्की पीसे जाने की-सी आवाज़ चारों ओर व्याप्त हो गयी। जलचर अपनी जबान दबा कर सतह के नीचे घुस गये। बच्चा अब भी चारपाई पर खेलता जा रहा था। एक साँप थक कर चारपाई की पाटी से सट गया और एक मुर्दा बकरी फूल कर साँप के पास लगी, बह रही थी। रह-रह कर साँप को धक्का लगता, पर वह सहारे को कैसे छोड़े? बच्चा अपना मासूम हाथ उसकी ओर बढ़ा रहा है। मेझुकी चारपाई की पाटी पर जा बैठी,—आँखों में काजल, माथे पर डिठौना, कैसी तरल हँसी है होठों पर!

"तुम्हें आसक्ति हो रही है, मेझुकी? महरानी के राज में मोह का कोई स्थान नहीं।" मेढक जाने कहाँ से चिल्लाया और मेझुकी उचक कर पानी में कूद पड़ी। कड़ाके की गरज हुई और लपलपाती हुई आग की एक रेखा, पानी की सतह से, महारानी के पाँव चूमती, दूर चली गयी। साथ ही वरुण को गुप्त आदेश भी ले गयी। भय की कालिमा और भी गाढ़ी हो आयी।

मार्ग-निर्देशक चेल्हवा छटक कर आया और फूट-फूट कर आँसू बहाने लगा। अंग-रक्षक सोईस सूँ...सूँ करती पानी की सतह पर लेट गयी। मेझुकी उसकी पीठ पर बैठ कर, चारों ओर मेढक की आहट लेने लगी। तभी एकाएक अपने दोनों पिछले पाँव रबर की तरह फैलाता, मुँह बाये, हुँच्..हुँच्...हुँच् पानी उगलता, मेढक आया और महरानी के कदमों पर सिर रख कर बोला, "इस मायाकृत अंधकार को काटिए, रानी जी! आप का सारा अनुचर समुदाय त्रस्त है। मनुष्य तो अवाक् हो ही गया है। उसकी निस्तेज और आशंका से भरी आँखें आप के चरणों पर लगी हैं। चराचर के सभी जीव-जंतु, भयातुर-से इधर-उधर भाग रहे हैं। पवन को आदेश दें, महरानी, वरुण से कहें, कि वह रुक जाएँ! वर्ना प्रलय..."

धार करवट लेने लगी—हुड़्-हुड़् करके लहरें फट गयीं, "मैं केवल मनुष्य के बारे में सुनना चाहती हूँ। वह क्या कर रहा है, उसका तंत्र क्या सोच रहा है ?"

सूँ...सूँ की आवाज़ के साथ थोड़ा पानी फटा और सोइस अपना मुँह निकाल कर बोली, "मनुष्य अजेय है, देवी ! उसकी चिन्ताग्रस्त आँखें यह बता रही हैं, कि वह कुछ सोच रहा है। क्षण-भर को वह हतबुद्धि हो गया है, पर उसकी शक्तियाँ तो अपनी जगह हैं ही। उसका तंत्र हमारे सीने पर दौड़नेवाले यंत्र-यान ले कर चल पड़ा है।"

"बंद करो यह बकवास !" धार कड़क कर बोली। हड़ाम्-हड़ाम् का स्वर गूँज उठा। लहरें अपने ऊपर ही उछल पड़ीं और मेढक हवा में कलइया खाता हुआ छप् से पानी में आ गिरा। कगार करकरा कर टूटने लगे। बड़े-बड़े पेड़, लहरों के धक्के से उखड़ने लगे—भरम्-भाँय्...भरम्-भाँय्...सारा दिक्-दिगंत गूँजने लगा। मनुष्य की चीख खो गयी।

रात बिस्तर पर सोया पूरा परिवार लहरों में खो गया। जानवर चुभकियाँ खाते, घड़ियालों का भोजन बनने लगे। पहिना एक विशाल महुए के तने से जा सटा। उसी पर एक आदमी चिपका था। पहले तो पहिना डरा, पर साहस करके बोला, "तुम्हें क्या हो गया है, यहाँ कैसे ?"

मनुष्य कुछ चौंका। कैसी आवाज़ है, यह ! पर कुछ बोला नहीं। लहर के वार को हाथों से अपनी नाक दबा कर बचाता रहा। फिर लम्बी साँस ले कर, स्वतः बोलने लगा, "हम परिस्थितिवश बिखर जाते हैं ! अपने ही गुणों को नहीं पहचान पाते। भटकते हैं, ठोकरें खाते हैं, भले दिनों में स्वार्थ से अंधे हो जाते हैं, तंत्र को धोखा देते

हैं, जनता का गला काटते हैं।" और वह सिर पीट कर बच्चों की तरह रोने लगा। पहिना उसे देख रहा था। उसका भी जी भर आया। उसके पाँवों में चिपकी जोंकें उसका खून चूस रही थीं। नन्हें-नन्हें भौंरे कपड़ों में सटे थे। उसका हाथ-पाँव फूल गया था। सफ़ेद, सिकुड़े हुए चमड़े में उसका रक्त जमता जा रहा था। लेकिन उसके हाथ फैले थे, जैसे वह कुछ सँभाल रहा हो। पहिना ने ऊपर देखा, एक नन्हीं-सी बच्ची और एक स्त्री उसी तने में चिपके थे।

लहर दूर चली गयी थी। आदमी साँस ले कर बोलने लगा, "मैं इंजीनियर था। तंत्र के काम को किसी तरह रँग कर दिखा देने वाले ठेकेदारों को पूरा रुपया देता था। सीमेन्ट की जगह माटी भरवा देता था। बड़े-बड़े बाँधों में बालू भरवा कर खड़ा कर दिया था। इस तरह सामान और पूरा दाम ही हड़प नहीं करता था, बल्कि ठेकेदारों के मुनाफ़े में आधा हिस्सा ले लेना तो जैसे मेरा अधिकार हो गया था। आज धार की सिर्फ एक ठोकर खा कर, वह मेरा पूरा निर्माण ध्वस्त हो गया। वह फिर उसी तरह रोने लगा, और जैसे अपने ही ऊपर गुस्सा हो कर बकता रहा, "मोटरबोट तो थी, फिर बीवी-बच्चों के साथ, किश्ती पर मैं क्यों उतरा, इस पानी में ? क्या धार का गुस्सा..." आगे कुछ भी सुनाई नहीं पड़ा, क्योंकि धार का अट्टहास आसमान तक गूँज उठा था। पहिना भुनभुना कर एक मोटी-सी गाली देता हुआ पानी में छुप से सरक गया, कमीनी हर जगह कान लगाये रहती है ! और लहरों ने जाने कितनी शक्ति से, पूरे महुए के पेड़ को मरोड़ कर, दहाने में गाड़ दिया।

मेझुकी छटक कर, पानी पर कूदती दूर चली गयी। आगे जा कर देखा तो धारा आत्मसंतोष से मुसकरा रही थी। सिधरी उसके कानों

से सटी, जाने क्या फुसफुसा रही थी और घड़ियाल एक पूरे सूअर को जबड़ों में दबाये, ज़ोर से साँस ले रहा था। हवा बंद हो गयी थी, वरुण विश्राम को जा चुके थे।

—चेल्हवा नहीं आया, सोइस ने मार्ग का कोई समाचार नहीं दिया। क्या बात हो गयी? मेढक एक लकड़ी के टुकड़े पर बैठा, सोचने लगा। सहसा एक ओर से एक सफ़ेद, गोल चीज़ बहती हुई आयी, मेढक कूद कर उस पर गया, तो मेझुकी को वहाँ एकांत में विश्राम करते देख कर, वह नीचे से ऊपर तक सिहर उठा।

कहीं महरानी की निगाह न पड़ जाए, वह सोच ही रहा था कि मेझुकी स्नेह-भरे स्वर में बोली, "डरो नहीं, यह खादी की टोपी है। इसकी दीवारों के बीच हम सुरक्षित हैं। ज़रा सरक आओ न, मुझे जाड़ा लग रहा है।"

मेढक उससे सट गया।

"यह इस लोक की सबसे बड़ी ढाल है। इसके पीछे कुछ भी छिप सकता है। देखो न, इसका चँदोआ कैसा नीचे आ गया है, और दीवारें हमारे लिए आड़ किये हैं। जरा मुझे सटा लो अपने से। इस धार ने तो..." और दोनों क्षण-भर को उस तुमुल कोलाहल में खो गये।

धार चौंकी, हड़ाम्-हड़ाम्-हुड़म्...हड़ाम्-हड़ाम्-हुड़म्...! "कहीं कुछ गड़बड़ है!" सोइस नाक उठा कर बोली और मेढक छटक कर जल्दी में कूदा, तो जैसे किसी चट्टान पर जा बैठा हो। लेकिन चमड़े और वस्त्र से ढँकी चट्टान, जिसमें नन्हीं घोंघियाँ चिपकी थीं, कई जोंकें इधर-उधर अपने सूँड़ गड़ाये थीं और हेल्सा बार-बार

अपना मुँह मार रहा था। मेढक घूम-घूम कर देखता रहा, फिर चौंक कर हेल्सा के आगे जा बैठा, "क्यों मुँह मार रहे हो पत्थर में?"

"पत्थर ही समझो इसे, पर असल में यह आदमी है। अभी जिसकी टोपी में..." जैसे वह ग़लत बात कह गया हो, लाज के मारे चुप हो गया। मेढक डर के मारे काँपने लगा।—कहीं महरानी तक न पहुँच जाए बात! हेल्सा कहने लगा, "यह एक सदस्य है असेम्बली का। राजनीति से इसका कोई सम्बंध नहीं, पर राजनीति के बिना अर्थनीति का कोई भी मतलब नहीं होता प्रजातंत्र में, इसलिए चीनी मिल से कमाये दो लाख रुपये लगा कर इसने धारा सभा की एक सीट खरीद ली। कभी उस पर बैठ जाता, कभी नहीं, पर इस कुर्ते की हर जेब में इसने बीसियों संस्थायें पाल ली थीं। वे दूध देती थीं। जब मन में आता, दूह लेता। 'महिला सेवा कर्म' से ले कर 'बाल विचार परिषद्' तक और 'साहित्य धर्म' से ले कर 'लोक जीवन अध्ययन मंडल' तक अपनी सेवाओं का विस्तार किये था। कब सरकार को कितने चरखे चाहिएँ, और किस विभाग को कितनी वर्दियाँ चाहिएँ, फिर चरखे और वर्दी को एक रुपये में बनवा देना और शेष रुपयों को आमदनी के भंडार में जमा कर लेना, इसके बाँयें हाथ का काम था।

"लेकिन यह यहाँ कैसे?" मेढक उसकी तोंद पर बिछल कर गिरते-गिरते बचा।

"यहाँ?" हेल्सा हँसने लगा, "इसने बाढ़ देख कर, तत्काल 'बाढ़ पीड़ित संघ' बनाया और सबसे पहले स्वयं दस हज़ार का दान दे कर फंड खड़ा किया। इस सारे क्षेत्र में अनाज-कपड़ा बाँटने का काम सँभाला। सरकार और जनता से लाखों लिया और किश्तियों

पर चढ़ कर चना-गुड़ बाँटने लगा। लेकिन दुर्भाग्य से महरानी की चपेट में..." हेल्सा अपनी बात पूरी भी नहीं कर पाया था, कि लहरें चक्कर खा कर चीत्कार कर उठीं। पता नहीं, कहाँ गयी वह आदमी की चट्टान और कहाँ गया वह मांसभक्षी हेल्सा। पानी उछल-उछल कर अपना सिर धुनने लगा। महरानी तेज़ी से लहरों को दबा कर कई गज़ नीचे ले जातीं और उस सीध में, एक सिरे से दूसरे सिरे तक एक नयी नदी बहने लगती और फिर क्षण ही भर बाद, लहरों को उछाल कर आसमान तक पहुँचा देतीं। जो भी रास्ते में आता, वह टूट कर टुकड़े-टुकड़े हो जाता—हुर्...हुर्र्...उँम्...उँम्! सोइस सूँ-सूँ करती। घड़ियाल पानी को छपाक्-छपाक् फेंकता और मेढक पानी पर इस ओर से कूदता, उस ओर पहुँच जाता।

महरानी क्रुद्ध थीं। कछुई जल्दी-जल्दी उनकी लटें सँभाल रही थी। वे बुद-बुदा कर, जैसे अपने ही से कुछ कह रही थीं। चेल्हवा चमक कर उनके आगे खड़ा हो गया।

"लगाया कुछ पता?" उन्होंने तीखे शब्दों में कहा और तुरंत एक भारी-सा चक्करदार पानी का गढ़ा बन गया।

"हाँ, महरानी! यहाँ से रास्ता टेढ़ा हो गया है। हमारे सीधे रास्ते में कंकरीट की एक ऊँची छत है, इसलिए उससे लाचार हो कर हमें ठीक दक्षिण मुड़ जाना पड़ा है। और करीब एक मील दक्षिण जा कर, दो-तीन फर्लांग जमीन छोड़ता हुआ मार्ग फिर हमारे सीध में आ कर, सीधे पूरब की ओर चला जाता है।

कछुई अपने हाथ-पाँव चलाती, हाँफती आयी और साँस सँभाल कर कुछ बोलना ही चाहती थी, कि सोइस ने सूँ-सूँ करते हुए, अपनी नाक ऊपर की।

"मिट्टी काँप रही है, महरानी। हमारे हमले से हाहाकार मच गया है। कगार टूट रहे हैं। कंकरीट के ऊपर से लहरें छलक रही हैं।"

"नहीं-नहीं, महरानी जी!" कछुई ने अपनी गरदन बाहर निकालते हुए, सोइस की बात काट कर कहा, "लहरें पछाड़ खा रही हैं, उनका अंग छिल रहा है, क्योंकि वहाँ...वहाँ..." कछुई सहम कर रुक गयी।

"कहो न, डर किस बात का?" धार गम्भीर हो कर बोली।

"आदमी है, रानी जी! बड़े-बड़े नाव के बेड़े को लिये, लहरों को अपने रास्ते से मोड़ रहा है। वह पसीने से लथपथ हो रहा है, पर उसकी पेशानी पर एक अजीब-सी चमक है। मैं तो काँप कर बेहोश हो रही थी, तभी लहरों ने गुस्से में उठा कर, मुझे आप के पास फेंक दिया।"

"हाँऽ!" धार ने कहा, और हुड़्...हुड़्...हुड़् की ध्वनि लहरों ने चारों ओर फैला दी।

"लेकिन वह मेढक क्या कर रहा है?" महरानी चिढ़ कर बोलीं और मेझुकी का जी काँप गया। महाप्रयाण की बेला में सुरति कर्म की अशुद्ध क्रिया का अभिशाप उसके मन पर छा गया। वह डर कर बोली, "वहीं तो गये हैं, रानी जी! उन्हें केवल खबर तो देनी नहीं है। रोहू को साथ ले कर गये हैं। सारा नक्शा बना कर, आदि से अब तक का इतिहास भी तो बटोरना है उन्हें, इसी कारण देर हो रही है।"

धार चुप रही। वरुण आ कर, एक पाँव पर खड़ा था। पवन

आज्ञा के लिए मुँह देख रहा था। पर मेझुकी की बात से सब सन्न रह गये। थोड़ी ही देर बाद मेढक अपने पूरे दल-बल के साथ प्रविष्ट हुआ। सारा अनुचर मंडल धार महरानी के चारों ओर, लहरों को अपने पिछले पैरों से काटता हुआ, गुम-सुम बैठा रहा।

मेढक अपने चारों पैर फैला कर, पानी पर बैठते हुए बोला, "संघर्ष बहुत पुराना है, महरानी जी! एक तरह से यह प्रकृति और मनुष्य के आदि संघर्ष का प्रत्यक्ष स्थल है। बहुत पहले से इस टीले के ऊपर बसे गाँव में मल्लाह और भर नामक जातियाँ रहती हैं। इनके पास अधिक भूमि नहीं है। बस अपने-अपने घर और चार-छै कट्ठे भूमि हर एक के पास है, जिसे ये जान से भी ज़्यादा प्यार करते हैं और उसमें साग-भाजी उगाते हैं। सब श्रमिक हैं। काले, चिटचिटे, तेल से पुते इनके शरीर पर अगर मक्खियाँ बैठें, तो बिछल जाएँ। मजदूरी करके, नावें चला कर और हमारे बंधु-बांधवों को मार कर इनका पेट भरता है।

"बहुत पहले जब आप का मार्ग इधर बनने लगा था, तो इन्होंने धरती की बज्र-सी छत को काट कर इस किनारे की भूमि को ऊँचा कर लिया और पुराने कटाव को पीछे से मोड़ कर, फुटहवा नाम से एक नाला बना दिया है, जो आज तक कभी इस्तेमाल नहीं हुआ, क्योंकि लाख सिर पटकने पर भी उन्होंने लहरों को उधर से रास्ता नहीं दिया, वे कंकरीट की छत से धक्के खा कर पछाड़ खाती, और टूक-टूक हो कर बिखर जाती हैं। हमारी सेना के कितने ही पुराने सेनानी यहीं शहीद हो चुके हैं। मेरे प्रपितामह, महा भाषा-विद..." मेढक की आँख भर आयी। मेझुकी सिसकने लगी। डेढ़हा पानी चीरता हुआ मुँह बाये पहुँच कर बोल उठा, "यह तिरिया

चरित्तर की बेला नहीं है, मेझुकी ! इस समय चुप रहो !" मेढक ने गुस्सा हो कर उसकी ओर देखा और सोइस ने अपनी पीठ से ऐसा झटका दिया कि वह दूर जा पड़ा। इसी समय एक छप्पर बहता हुआ आया, पर घड़ियाल ने महरानी की ठहरी हुई सवारी को देख कर, उसे अपनी पीठ से टेक लिया।

मेढक कहने लगा, "तब से कई बार इस पूरे गाँव को आप का कोपभाजन बनना पड़ा, पर वीर मनुष्य अपनी नावों के बेड़े बाँध कर, लहरों का प्रवाह हमेशा थामते रहे। घर उजड़ गये, फिर बसा लिये, पर इन्होने इस धरती को आज तक नहीं छोड़ा।"

"हूँ !...धरती को आज तक नहीं छोड़ा !" धार की नसों में गर्म खून खौलने लगा। लहरें तेज़ हो गयीं। क्षण-भर को सारा जल काँपने लगा, जैसे धरती को ही किसी ने नीचे से हिला दिया हो।

"कहते जाओ तुम !" धार गुस्से में बोली।

"इसलिए आप को मुड़ कर यहाँ से सीधे दक्षिण पथ जाना पड़ता है, बिल्कुल आदमी के मन पर चल कर, और वहाँ से लौट कर फिर यहीं से सीधे पूरब के लिए मार्ग मिल पाता है। तब बलराज राऊत इस बस्ती का सरदार था, और उसी ने यह कंकरीट की छत जुड़वा कर, किनारे को बज्र-सा बना दिया है और इस समय महरानी,..." मेढक साँस लेने को रुका ही था कि रोहू बोल उठा, "उसी का प्रपौत्र बसंता है, महरानी जी ! बीसियों नावों का बेड़ा बनाये, स्वयं एक भारी किश्ती की डाँड़ थामे, लहरों को इस तरह पीछे मोड़ देता है, जैसे कोई गीदड़ को खदेड़ देता हो। उस कंकरीट की छत पर ज़ोर ही नहीं लग पाता, महरानी जी !"

"अच्छा !" धार की आखें थोड़ी फैल गयीं। वरुण और भी पास झुक आया। उसकी भूरी लटें धार के पास तक लहराने लगीं और पवन चुपचाप लहरों पर बैठ गया।

सिधरी ने छटक कर बात छीन ली, "देखते ही बनता है उस आदमी को, महरानी जी ! माथे की काली, लहराती लटों पर लाल गाउटी गमछा, कमर में कसी हुई लँगोट। सारा शरीर जैसे आबनूस की लकड़ी की तरह चमकता है, और आँखें...!" वह रोहू की ओर देख कर मुसकराने लगी।

धार चुप थी। सबका मुँह देख रही थी। मेढक जी कूद कर सोइस की पीठ पर जा बैठे। धार ने उनकी ओर देखा, तो कहने लगे, "हमारे दाहिने 'बिहड़ा' नाम का बहुत बड़ा गाँव है। और इस मोड़ पर है, 'बाबा' का प्रसिद्ध बगइचा, 'गुलरा'। और इधर आपके पेट में बसा हुआ है 'भितरी'। भीतर है न ! यहाँ के आदमी आप के परम दास हैं। जैसे ही आप की अगवानी होती है, बेचारे अपना डेरा-डम्बर उठा कर रास्ता नापते हैं और इस लोहे की चट्टान पर टक्कर खा कर क्रुद्ध लहरें इस पूरे मील-भर के भू-भाग के ऊपर से बहने लगती हैं..." सोइस धुड़प से पानी में डूब गयी और बेचारे भाषा विज्ञानी जी के खुले मुँह में पानी भर गया। सिधरी मुसकरायी, और घड़ियाल ने आदमी की तारीफ़ से ऊब कर छप्पर से अपनी पीठ हटा ली।

लहरों ने महरानी के डर से पवन को इशारा किया और हर्र्-हर...हर्र्-हर की ध्वनि चारों ओर व्याप्त हो गयी। छप्पर वहीं भँवर में डाल कर मरोड़ दी गयी।

धार ने अपने सहयोगियों को ललकारते हुए कहा, "आदमी ! यही हाय-हाय करता, कुत्तों की तरह जीभ निकाल कर भागनेवाला

कायर आदमी!" हड़ाम्-हड़ाम्-हड़्...लहरें तांडव करने लगीं। धार ने हाथ उठाते हुए, वरुण को ललकारा और पवन को कस कर एक लात लगायी।

घुड़्-घुड़्-घुड़्-धड़ाम्-धड़ाम्...कंकड़ की छत पर झूमता, विशाल बरगद का पेड़ झुलस कर धराशायी हो गया, जैसे आग की तेज लपट से सारा विश्व झनझना कर सिकुड़ गया हो। हर्र्...हर्...हर्...हर्...अपार जल-वृष्टि होने लगी। उंचासों पवन झकोरने लगे।

"बहा दो पूरे बेड़े को, लहरों पर पटक कर चूर कर दो! तोड़ो कंकरीट को, लहरें यहीं से सीधा जाएँगी। मार्ग तनिक भी नहीं बदल सकता। आदमी आएँ तो मेरे रास्ते में!" धार ने जैसे अपने पूरे वेग को किसी धनुर्धर की प्रत्यंचा की तरह कानों तक चढ़ा लिया। पानी सिमट-कर भूखे पेट की तरह खाली हो गया और प्रत्यंचा के छूटते ही पवन वेग से, किसी पहाड़ी की तरह, ऊपर उठ गया। लहरें दौड़ पड़ीं—हड़ाम्-हड़ाम्! किश्तियाँ एक-दूसरे से टकरायीं और कगार से सटी किश्ती चरचरा कर दोने की तरह टूट गयी। मिट्टी का एक बहुत बड़ा टुकड़ा टूट कर भल् से गिरा और कई नाँवें मिट्टी से भर गयीं। बसंता का पटौंधा डोंगा लहरों के साथ ऊपर उठ कर, फिर वहीं बैठ गया। औरतें चीखने लगीं। बच्चों ने अपनी आँखें ढँक लीं। लहरें लौट गयीं।

मल्लाहों की पानी से लथपथ मांसपेशियाँ थोड़ी ढीली हो गयीं। बसंता ने हाँक दी, "बेड़े को सीधा करो, मुरली को किनारे भेजो, काका थक गये हैं, वह धार के रुख को समझती है।"

वरुण कोप करके बरसने लगा, पवन एँड़ी का पसीना चोटी

करने लगा, पर नन्हें-नन्हें बच्चे किश्तियों से पानी उलीचते रहे। औरतें डाँड़ सीधा करती रहीं और बसंता लहरों को खदेड़ता रहा।

"यही पिद्दी आदमी की शक्ति थी! ओ...हा ऽ ऽ हा ऽ ऽ आ ऽ ऽ ऽ...एक ही धक्के में इसकी साँस फूल गयी। मेझुकी, देख तो, उन सब का क्या हाल है अब?"

इसी समय दूसरा कगार टूट कर गिरा और दूसरी ओर की किश्ती मिट्टी से एकदम पट गयी। बसंता घबरा गया, "मेरी नाव के कोने से लहरों की टक्कर कगार तक पहुँच रही है। कोई उधर से काट कर एक छोटी-सी किश्ती ले आए और इसके नीचे लगा ले। बहुत जल्दी करे, इस बार धार के लौटने से पहले..."

कोई टस-से-मस नहीं हुआ। कुद्ध धार से टक्कर खा कर छोटी नाव जाने कहाँ जा पड़े। पर यह बसंता का हुक्म है, धार से लड़ना ही होगा। मुरली बिजली की तरह कगार के नीच की एक किश्ती पर कूदी और पतवार चलाने लगी। पवन ने पहचाना, वरुण ने इशारा किया और लहरों ने किश्ती को खींच कर धार के चरणों में डाल देना चाहा, लेकिन बसंता?—मुरली अकेली कैसे जाएगी! वह छलाँग मार कर, किश्ती में पहुँच गया। पतवार से पानी की ओर मार कर, किश्ती को लहरों के सीने पर कर लिया।

धार ने खींचा। किश्ती जैसे निरावलम्ब चली गयी, धार की प्रत्यंचा पर कान तक चढ़ गयी।

"यही दोनों हैं?" धार ने देखा, तो उसकी आँखों में खून उतर आया, "कितने ढीठ हैं, दुराग्रही!" और जैसे ब्रह्मास्त्र ही छोड़ दिया हो। बसंता ने नाव ज़रा-टेढ़ी करके, पतवार ऊपर कर ली,

दूसरी ओर कगार को टेक देने के लिए, बाँस को बाहर निकाल लिया। लहरों के धक्के पर किश्ती ऐसे उतर गयी, जैसे किसी ने धार में फूल चढ़ा दिया हो।

"बस, इसे अब लौटने नहीं देना है!" बसंता ने रस्सा उठा कर फेंका और मुरली ने छोटी नाव को बड़ी से जकड़ कर बाँध दिया और दूसरे सिरे को खींच कर दूसरी नाव से जोड़ दिया। एक बड़ा-सा बाँस लगा कर छोटी किश्ती को ज़मीन से साध दिया। मुरली मुसकराने लगा, तो बसंता क्षण-भर को उसे देखता रह गया। उसकी आँखें साफ कह रही थीं, इस नयी नाव के पूजन में तू नवरिया गाएगी और हम दोनों हमेशा-हमेशा के लिए..." पर मुरली बिदकती हुई बोली, "इधर क्या देखते हो? लहरें आज बहुत बिगड़ी हैं। आज रात बीत जाए तो जानो!"

"आज की रात?" बसंता हँसा, "तुम सब जा कर रोटियाँ सेंको, आज रात बेड़ा छोड़ा नहीं जा सकता। हम-सब यहीं रहेंगे, पर माई को लेने कौन जाएगा?"

"मैं लाऊँगी जा कर, इसकी चिन्ता न करो। वहाँ गाँव वालों की सहायता को गयी किश्तियाँ तो होंगी ही, भैया होगा, मंगू काका होंगे, सबको आज रात यहीं बुला लाऊँगी।"

मेझुकी वहीं खड़ी सब सुन रही थी। पहिना ने धीरे से मुँह बा कर उसे निगलना चाहा, पर रोहू की पूँछ से ज़ोर का छपाका खा कर वह बेड़े के बीच घुस गया। मेझुकी जान बचा कर भागी और धार के पास पहुँची। धार उदास सोच में डूबी पड़ी थी। हुर... हुरुर...हुर्...की आवाज़ लहरों के होंठों पर चढ़ी थिरक रही थी, जैसे सब कुछ थक कर चूर हो गया था।

पवन घर लौट गया था। वरुण ने चार घंटे की छुट्टी ले ली थी। मेढक जी जाने कहाँ से एक संदूक बहा कर लाये थे और उसी पर बैठे ऊँघ रहे थे। रोहू उसी से सहारा ले कर दम ले रहा था।

मेझुकी जा कर धार महरानी के बाल सँभालने लगी। फिर उसकी आँखों में आँखें डाल कर बोली, "क्या बात है महरानी, क्यों उदास हैं?"

"इसी तरह, मेझुकी, सिर कुछ भारी है। कई दिन से आराम नहीं किया न!" फिर कुछ रुक कर, जैसे कोई भेद की बात कह रही हो, "एक बात पूछूँ?" लहरें शांत हो गयीं। सारा हड़मू-वेग क्षण-भर को रुक गया।

"यह आदमी के सीने में पीठ सटाये डाँड़ सँभालने वाली कौन थी?"

"वह आदमी की आदि शक्ति थी महरानी जी, मुरली! देखा आपने किस तरह मौत से लड़ रही थी! भरी-पूरी थी न! बसंता के पत्थर-से सीने से पीठ अड़ाते-अड़ाते, उसकी गोद में बैठ गयी थी। लेकिन आप क्यों..."

"कुछ नहीं, कुछ नहीं, ऐसे ही पूछा। उसे तो आना ही है मेरी गोद में।" धार जैसे बात टालते हुए बोली और मेझुकी उसके माथे की लटें हटा कर उसकी आँखों में देखने लगी।

चेल्हवा इस प्रसंग को सह नहीं पा रहा था, और झिंगवे को कब से उभाड़ रहा था, कि चल कर महरानी से सब बताओ। वह उछल कर धार के आगे आ गया, फिर कुछ रुक कर कहने लगा, "इस झिंगवे से मिलिए, महरानी! आदमी को खूब जानता है। इसने बड़ी अच्छी बातें बतायी हैं।"

धार उठ बैठी। झिंगवे ने साष्टांग दंडवत् करते हुए कहा, "आदमी शक्ति से अजेय है, महरानी, उसे जीतने के लिए बुद्धि का प्रयोग करना होगा, कूटनीति चलनी होगी, उसी के बीच से आदमियों को फोड़ना होगा। उसकी संगठन शक्ति को भंग करना होगा।"

"हाँ, हाँ महरानी ! एक बात कहूँ" मेझुकी बोली, "आज मुरली अपनी माँ को लेने रात में भितरी गाँव जाएगी। उसे लहरें उधर ही रोक लें, तो बसंता का साहस आधा हो जाएगा।"

धार जैसे इस समय झिंगवे ही को सुनना चाहती थी, "तो तुम्हारा क्या खयाल है ?"

"यही कि किनारों पर बसे आदमियों में बहुत-से ऊँची जाति के लोग हैं, जो आपके आतंक से परेशान हैं, और उन पर प्रभाव इसलिए है कि आपके सीधे मार्ग को वे छोटी जाति के लोग हमेशा के लिए रोक कर बैठ गये हैं। आप सीधे मार्ग से जाना चाहें, तो वे आपका साथ देंगे।" झिंगवा बोल ही रहा था कि घड़ियाल ने वहीं मुँह बाया और फिर समा गया। धार ने गुस्से में घड़ियाल के मुँह पर एक झापड़ मारा और वह बेचारा वहीं पानी में डूब गया। पानी ज़ोर से उछला और झार-झंखाड़ इधर-उधर छिटक गये।

रोहू को ले कर मेढक भीतरी गाँव के घाट पर जा बैठा। एक बूढ़ी अपना घड़ा भरते-भरते, किनारे पर बैठी बरतन माँजनेवाली दूसरी औरत से बोली, "बड़ा गड़बड़ सुन रही हूँ, जानकी ! गाँव के बड़े पंडित मलहटोली की कंकड़वाली छत पर फावड़ा चलवाना चाहते हैं।"

"फावड़ा !"

"हाँ बसंता को किसी उपाय से हटा कर, वहाँ से धार को सीधा रास्ता दिलवा देना चाहते हैं। कुछ तैयारी भी देख रही हूँ। आज तो लच्छन और खराब हैं। करिया बादर चढ़ा आ रहा है। जाने कैसे घर पहुँचना होगा। पानी जाने कब गाँव के ऊपर से बहने लगे।"

मेढक टर्-टर् करता भागा। रोहू ने पीछा किया और दोनों हाँफते-हूँफते धार के पास पहुँचे। पूरी सहचर मंडली आज रात की चढ़ाई के लिए तैयार हो रही थी। सोइस बार-बार कगार पर अपने सूँड़ मार आयी थी। डेढ़हे ने नाव की संधि का अंदाज़ लगा लिया था और कछुई बसंता के साथियों की पूरी तैयारी का भेद महरानी को बता चुकी थी। घड़ियाल लहरों की मदद से ऊपर चढ़ कर, उस बबूल पर चिपके आदमी को उदरसात कर अपनी बहादुरी का रोब जमा चुका था। पवन ने थोड़ा कोण बदल कर, वृक्षों की जड़ों पर दूसरी ओर से धक्का पहुँचा, सारी वनस्पति उखाड़ फेंकने का बीड़ा उठा रखा था, और वरुण ने आदमी को कहीं भी न जा सकने देने का व्रत ले लिया था।

मेढक को देख कर लोग रुक गये। हाऽऽ-हाऽऽ-आऽऽ आऽऽ की ध्वनि थोड़ी कम हो गयी, तो मेढक ने सारी दास्तान सुना डाली, और रोहू ने महरानी को एक बार उस भितरी गाँव को एक डुबकी दे कर, फिर पीछे हट आने और इस तरह आदमी को डरा कर, अपने साथ ले कर, आदमी से लड़ा देने की सलाह दे दी।

लहरें बढ़ीं, हर्र्-हर्...हुरुर्-हुर्...करके, जैसे समताल पर किसी सिद्ध नर्तकी के घुँघरू बज उठे हों। धीरे-धीरे पवन डुरका और वरुण ने ऊपर से भितरी को डुबो दिया। धार ने सँभाल कर धक्का

दिया, और ज़मीन की पीठ पर से मील-भर में लहरें दूसरी ओर उतरने लगीं। सब-कुछ धुल गया। घर-बखरी कुछ नहीं, आदमी-जानवर, कुछ नहीं। जो बचे थे एक टीले पर कीड़ों की तरह बिलखने लगे, और साँप-बिच्छुओं के साथ बैठ कर, अँधेरा काटने के लिए, धार से विनती करने लगे। कोई शोर-शराबा नहीं, केवल मनुष्य का चीत्कार। धार उनसे खेलती रही। तभी मेझुकी छटक कर आयी और कहने लगी, "इस किश्ती को देखती हैं, महारानी, इस पर मुरली आयी है, टीले से अपनी माँ को लेने।"

धार आँख फाड़ कर देखने लगी।

"बसंता से इसकी मँगनी हो गयी है। शादी तो अभी बाक़ी है। माँ बड़े पंडित के घर काम करती है।" धार सुनती रही, सुनती रही, फिर एकाएक कटकटा कर झपटी और आम के पेड़ के साथ किश्ती को उठा कर लहरों में दूर गाड़ आयी और मुरली को बहुत दूर तक सिर के बल डुबोये, दूसरी ओर झोंक आयी। घड़ियाल मौका पा कर दौड़ा, पर पहिना ने आदमी के तैरने-सी ध्वनि करके, उसे कहाँ-का-कहाँ पहुँचा दिया। और मुरली एक लकड़ी के मोटे कुंदे के साथ, तैरती-तैरती दूर ज़मीन की रीढ़ पर पहुँच गयी।

धार हँसती हुई लौट गयी। लहरें किलकारी मारने लगीं। आदमी की आवाज़ डूब गयी।

"बसंता मुरली को खोजने जाएगा। ठीक उसी समय, महारानी जी!" मेढक जी मंत्रोच्चार करते हुए बोले।

चारों ओर कोहराम मच गया। कई किश्तियों पर आदमी-जानवर ला कर ज़मीन पर उतारे जाने लगे। सरकारी मोटरबोट पंडित जी के आदमियों को मलहटोली में उतारने लगा।

बसंता के हाथ शिथिल हो गये। बार-बार मुरली का ध्यान उसे सताने लगा, पर वह बेड़े को कड़ा किये, अपनी बल्लियाँ सँभाले, बजरी की अधपकी लिट्टियों पर नमक छिड़क कर खाता रहा। उसी समय पानी में तीर की तरह तैरती दो किश्तियाँ आयीं और एक बेहोश बच्चा बसंता को थमाते हुए एक मल्लाह कहने लगा, फुटहवा तैयार हो गया है, किनारे तक इधर-उधर से मिट्टी निकाल दी गयी है। ज़रूरत पड़ते ही पानी काट दिया जाएगा।

"बहुत ठीक, पर मुरली और उसकी माँ का कुछ पता नहीं चला।"

"मैं देखता हूँ।" किश्ती पानी को काटती हुई लौट गयी।

मेढक सब सुन रहा था। ठठा कर हँसा, तो बसंता ने डाँड़ को पानी पर छप् से मारा, और वह गुड़ुप से पानी में डूब गया। उसी समय डोंगी लौटी और मंगू ने रो-रो कर मुरली के बह जाने का समाचार दिया। पंडित के कई आदमी बेड़े पर आ कर समाचार की पुष्टि करने लगे, और बसंता को इस बात के लिए उभारने लगे कि वह बेड़े को छोड़ कर मुरली को देखे।

बसंता भी रुकने वाला नहीं था।

चेल्हवा छटकता हुआ गया और महारानी के कान में फुस-से कुछ कह कर लौटा ही था कि लहरें सिमट कर एक ओर चढ़ गयीं। सरकारी मोटरबोट लहरों के पूरे मार्ग को मोड़ कर कगार की ओर किये निश्चल खड़ा हो गया था।

हुड़्-हुड़्...हुड़ुम्-हुड़ुम्-हुड़ुम्! और सारा बेड़ा टूट कर बिखर गया। कई किश्तियाँ टूट कर, चूर-चूर हो गयीं। लहरों के ज़बरदस्त

एक पर एक आ कर कंकरीट की छत से लड़ने लगे। बेड़े के मल्लाहों में हाहाकार मच गया। लोग नाव पर से उतर कर भागने लगे। कगार हड़म्प्-हड़म्प्...छप्-छप् गिरने लगे। ऊपर पंडित के किराये के आदमियों के फावड़े चलने लगे और बेड़े की बची-खुची किश्तियाँ भी एक-दूसरे से अलग कर दी गयीं। कई तो धार के अट्टहास के साथ, पेट के बल पानी में उछल-उछल कर गिरती रहीं। चेल्हवा और सिधरी नाच-नाच कर, विजयोल्लास प्रकट करने लगे। वरुण झूम-झूम कर बरसने लगा और पवन ने पल-भर में सारे पेड़-पौधों को उखाड़ कर लहरों के हवाले कर दिया।

पर यह क्या? धार शिथिल होने लगी। लहरें जैसे शराब के नशे में लड़खड़ा कर गिरने लगीं। सोइस का कगार से लगा मुँह बार-बार पीछे हटने लगा। डेढ़हा लहरों में बह कर किनारे से दूर मुड़ गया। वरुण कर्महीन-सा मछुओं की एक नन्हीं किश्ती की छत पर पड़्-पड़् अपनी बूँदें बरसाने लगा, जिसके नीचे आग की लपटों के किनारे एक षोड़श वर्षीया स्वस्थ युवती, अपने भींगे कपड़ों को बार-बार अपने स्तन पर से उचार कर, अपने को छिपाने की कोशिश कर रही थी, और बसंता डाँड़ मारता, ललकार रहा था, "और चौड़ा करो, फुटहवा के मुँह को काट कर, धार के लिए रास्ता बना दो!" पचासों फावड़े साथ चल रहे थे। नाले का मुँह चौड़ा किया जा रहा था और लाचार लहरें उससे ढुरक कर दूसरी ओर चली जा रही थीं!

धार बार-बार अपने को समेटती, लहरों की प्रत्यंचा को कानों तक चढ़ाती, पर छूटते ही जैसे तीर असक्त-से लड़खड़ा कर टूट जाते, उसी फुटहवा में मुड़ कर समाप्त हो जाते। छल-छल की ध्वनि के बाद

घोर गर्जन की आवाज़ में नाला बहने लगा। मेढक लहर पर चढ़ कर आया और जाने कहाँ चला गया। घड़ियाल एक पेड़ में फँसा लुढ़कता-पुढ़कता, किनारों से टक्कर खाता, केवटों के बच्चों का खिलवाड़ बनता दूसरी ओर चला गया। बड़े पंडित के किराये के आदमी अंधकार में छिप गये। बसंता ललकारता रहा। मुरली भी अब तक कड़ी हो गयी थी, वह बाहर निकल आयी और आँचल से धार को प्रणाम करने लगी। आग की लपटों में उन दोनों के लोहित शरीर दमक रहे थे। आँखों की कालिमा खुशी की रोशनी में दहक रही थी। धार ने आँख उठा कर देखा और बसंता ने बड़ी उदासी से मुँह फेर लिया, फिर किनारे पर कूद कर, फावड़े से नाले का मुँह चौड़ा करने लगा।

धार ज़मीन में गड़ती गयी, "उफ ! यह मेरी ओर देख भी नहीं सकता, क्या मैं इतनी कुरूप हूँ ?" और निष्प्राण हो कर कंकड़ की छत से सिर टकराने लगी। मेझुकी ने उसे सँभाला और बिसूरती हुई कहने लगी, "कोई साथ नहीं देता, महरानी, देखो मेरे मेढक भी···" और वह भी फूट-फूट कर रोने लगी।

"काश, मैंने सोइस का कहना माना होता, मेझुकी ! आदमी अजेय है, उसे छोटा माननेवाला हमेशा मुँह की खाता है। अब मैं हमेशा किनारों में बँध कर ही बहूँगी, शायद उसे यही अच्छा लगे। उसके पाँव पखारूँगी, उसके खेतों को सीचूँगी। क्या जन्म-जन्मान्तर तक मेरी इस सेवा से भी वह नहीं पसीजेगा, मेझुकी ! देख, मैंने यहाँ कितना गहरा दहाना बना लिया है। मैं अब इसे छोड़ कर कहीं नहीं जा सकती।" वह अपने सेवार-से बाल फैला कर, कंकड़ की छत से सिर टकराती रही। फिर जैसे अपने ही में डूब कर, कहने लगी हो,

"शायद तू मेरी उच्छृङ्खलता से चिढ़ता है। उफ़ रे, आदमी! तेरी वह खिंची हुई भौंहें, तेरे हाथों की उभरी हुई मांसपेशियाँ, तेरे माथे के घुँघराले बाल !...क्या मेरी तपस्या का कोई भी असर नहीं पड़ेगा तुझ पर! तू ज़रूर एक दिन प्यार से मुझे अंगीकार.."और वह बुदबुदाती हुई नीले, समगम जल में समा गयी, "युग-युग तक प्यार पाने के लिए, केवल आदमी ही रह जाएगा। मैं उसी को प्यार करूँगी, मेझुकी, मैं उसी को....."